राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम :

पता :

जिला : शहर राज्य पिन कोड

फोन : ई-मेल :

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.)
वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) ड्राफ्ट संख्या
बैंक एवं शाखा द्वारा जारी
भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
अल्पना भसीन, विजय कुमार

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
अरूप गुप्ता

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार, नीलकमल अरोड़ा

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और
रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

संपादक : पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित :
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-4; अंक-5; सितंबर-अक्तूबर, 2019

>> 'बा-बापू-150' विशेषांक <<

इस अंक में

संपादकीय	*प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा*	2
अभिनंदन	**मानव संसाधन विकास मंत्री, भारत सरकार : डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'**	3
आलेख	**गांधीजी के व्यक्तित्व और महानता को उकेरतीं न्यास की गौरवमयी पुस्तकें**—*अनुराग चतुर्वेदी*	4
लेख	**कस्तूरबा गांधी**—*निशा नंदिनी भारतीय*	7
प्रसंग	**बा-बापू के जीवन से जुड़े कुछ रोचक प्रसंग** —अरविंद मोहन	9
लेख	**गांधी और जिन्ना**—*प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा*	12
लेख	**महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा**—*सन्त समीर*	15
आलेख	**शक्ति की अहिंसक कल्पना**—*राजीव रंजन गिरि*	19
कहानी	**बहुरूप गांधी**—*अनु बंद्योपाध्याय*	22
आलेख	**गांधी और हिंदी**—*डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय*	27
कविता	**'बा' की याद में**—*भवानी प्रसाद मिश्र*	31
शब्द ज्ञान	**आओ भारतीय भाषाएँ सीखें**	32
लेख	**बापू की पहली और सर्वश्रेष्ठ जीवनियाँ**—*विवेक शुक्ल*	34
आलेख	**गांधी का ग्राम स्वराज एवं आज का पंचायती राज** —*डॉ. महीपाल*	37
लेख	**विदेश में महात्मा गांधी की लोकप्रियता**—*विजय कुमार*	41
पुस्तक समीक्षा		44
पुस्तकें मिलीं		60
साहित्यिक गतिविधियाँ		62

गांधी को समझें

यह वर्ष महात्मा गांधी का 150वाँ जन्म वर्ष है। समूचे विश्व में गांधी और उनके योगदान को रेखांकित किया जा रहा है तथा वर्तमान में उनके विचारों की प्रासंगिकता को स्वीकार किया जा रहा है। पर आज भी हम गांधी को पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं।

गांधी के संबंध में बहुत कुछ लिखा गया है। स्वयं गांधी के द्वारा लिखे गए लगभग 50 हजार पृष्ठों को 100 जिल्दों में 'संपूर्ण गांधी वाङमय' के रूप में प्रकाशित किया गया है। गांधी के समकालीन कई विचारकों और राजनेताओं ने गांधी के संबंध में लिखा है। गांधी के कार्यों एवं उनके चिंतन पर हजारों शोध हो चुके हैं तथा विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में गांधीजी से संबंधित प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इतना सब कुछ होने पर भी यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज गांधी को लेकर अनुचित टिप्पणियाँ की जा रही हैं तथा भ्रमात्मक बातें फैलाई जा रही हैं।

गांधी युगपुरुष थे। उन्होंने 20वीं सदी में इतिहास की धारा को बदला। गांधी, विध्वंस और बर्बरता के विरुद्ध शांति और अहिंसा के प्रतीक थे। उन्हें शांति दूत कहा गया। राम मनोहर लोहिया ने, 'गांधी और बम' शीर्षक से एक लेख लिखा था कि, "हमारी सदी (20वीं सदी) ने दो आविष्कार दिए, 'गांधी और बम'। जब यह बात कोपेनहेगेन की एक प्रेस कांफ्रेंस में कही गई तो प्रसिद्ध ब्रिटिश पत्रकार एच.एन. ब्रेल्सफोर्ड ने बाद में इसमें लेनिन को भी जोड़ा। जब बातचीत समाप्त हुई तो ब्रेल्सफोर्ड ने महात्मा गांधी के जीवन की समीक्षा में लिखा कि लेनिन मार्क्स की गूँज थी, जिसे इतिहास की फुसफुसाहट वाली दीर्घाओं ने प्रवर्धित किया, जबकि गांधी मौलिक थे।"

20वीं सदी में बम का भी आविष्कार हुआ और प्रयोग भी। इसकी संहारक क्षमता ने मानवता को हिला दिया। मानव सभ्यता के सामने अस्तित्व के प्रश्न को खड़ा कर दिया। बम काल (विनाश) का रूप बन गया। बम को विकसित करने वाले दल के प्रमुख जे. रॉबर्ट आपेनहैमर ने 1945 में बम की मारक और विध्वंसक क्षमता को देखकर भगवान कृष्ण के शब्दों को ही प्रतिध्वनित करते हुए कहा, "मैं काल बन गया हूँ—सर्व संहारक काल।"

आज भी हथियारों की मारक क्षमता को बढ़ाने में विश्व के सैकड़ों वैज्ञानिक अनेक देशों की शोधशालाओं में प्रयोग कर रहे हैं। आखिर हम कहाँ जाएँगे। कल का क्या होगा? इसका उत्तर है गांधी। गांधी बम का विकल्प हैं। जिस बम के बल पर अमेरिका और मित्र देशों ने द्वितीय विश्व युद्ध को जीता, उसके एक सहयोगी साम्राज्यवादी ग्रेट ब्रिटेन को गांधी ने अहिंसा के बल पर चुनौती दी और जीत हासिल की। ब्रिटेन को भारत स्वतंत्र कर जाना पड़ा विश्व के सम्मुख बम की बराबरी पर, इतना ही नहीं बम से आगे अहिंसा की शक्ति को गांधी ने स्थापित किया।

गांधीजी ने देश में आत्मविश्वास और आत्मगौरव की स्थापना की। पाश्चात्य शिक्षा के कारण देश में एक ऐसा शिक्षित वर्ग विकसित हो गया था जो अपनी संस्कृति, सभ्यता और परंपराओं के संबंध में हीनभाव से ग्रस्त था। हम अपना आत्मसम्मान और आत्मगौरव खोने लगे थे। जो भी अंग्रेजों का है, वह उच्च श्रेणी का है, यह हम मानने लगे थे। हमारी मानसिकता बदल रही थी। राष्ट्रीय कांग्रेस के कई नेता ब्रिटिश शासन को ईश्वरीय कृपा तक मानते थे। ऐसे समय में गांधीजी ने अपने विचारों और कार्यों से भारतीयों को जगाया। इस कार्य का प्रारंभ निश्चित रूप से 1909 में गांधीजी द्वारा लिखित पुस्तक 'हिंद स्वराज' से हुआ। गांधीजी ने पश्चिमी सभ्यता को पूरी तरह नकारा। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता को अधर्मी सभ्यता कहा। उन्होंने कहा कि यह सभ्यता यूरोप में इतने नीचे दर्जे तक गई है कि वहाँ के लोग आधे पागल जैसे दिखने में आते हैं। गांधी के इन विचारों का तथा उनके प्रयत्नों का दीर्घकालीन प्रभाव हुआ, भारत में जनचेतना जागृत हुई तथा भारतीयता के प्रति आस्था और ब्रिटिश सत्ता के प्रति आम जनता में आक्रोश विकसित हुआ। देश में जनचेतना विकसित हुई जो पहले कभी नहीं हुई थी।

गांधीजी के चिंतन में अहिंसा का विचार सर्वाधिक महत्व का है। विचारक यहाँ तक मानते हैं कि गांधीजी के विचारों के रूप में अहिंसा का पुनर्जन्म हुआ है। इतिहास में पहली बार अहिंसा का प्रयोग साम्राज्यवादी शक्ति के विरोध में शस्त्र के रूप में गांधीजी ने किया। वैसे अहिंसा का सिद्धांत भारतीय दार्शनिक चिंतन के साथ प्राचीन काल से ही जुड़ा है। गौतम बुद्ध की शिक्षाओं में अहिंसा का उपदेश है। महावीर स्वामी को अहिंसा का अवतार मानते हैं। भारतीय शास्त्रों में 'अहिंसा परमोधर्म' कहा गया है। पर गांधीजी ने तो उसे पराई सत्ता के विरोध के लिए तथा स्वाधीनता की प्राप्ति और स्वराज की स्थापना के लिए हथियार के रूप में प्रयोग किया। यह इतिहास में पहली बार हुआ कि विश्व का सबसे बड़ा साम्राज्य एक व्यक्ति की अहिंसक शक्ति और उसके द्वारा जागृत जनचेतना के कारण हिल गया और अंततः देश को आजाद कर वापस चला गया।

गांधीजी ने राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए अनेक साधनों का उपयोग किया। इन सभी साधनों को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है, पर इन सबको सामूहिक रूप से 'सत्याग्रह' कहा जा सकता है। प्रारंभिक अवस्था में निष्क्रिय प्रतिरोध, बाद में असहयोग, सविनय अवज्ञा, उपवास, धरना आदि सब सत्याग्रह के ही रूप हैं। वस्तुतः सत्य के लिए आग्रह ही सत्याग्रह है। गांधीजी के स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष में सत्याग्रह प्रमुख हथियार था।

राजनीति के अलावा गांधीजी ने सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में भी ऐतिहासिक कार्य किए। अस्पृश्यता निवारण के लिए गांधी के प्रयत्न ऐतिहासिक हैं। भारतीय समाज की यह सबसे बड़ी विसंगति और विडंबना रही है कि उसने सभी में परमात्मा वास मानते हुए भी अपने ही समाज के एक वर्ग को अस्पृश्य माना। इसके जो भी ऐतिहासिक कारण रहे हों, गांधीजी ने अस्पृश्यता के विरोध में प्रबल अहिंसक आंदोलन खड़ा किया और इस दिशा में सार्थक कार्य किए। सन् 1932 में जब ब्रिटिश सरकार ने दलितों को हिंदुओं से अलग कर पृथक प्रतिनिधित्व देने का कानून बनाने का प्रयत्न किया तब गांधी का आमरण अनशन हिंदुओं को तमाम सामाजिक कमजोरियों के बावजूद एक बनाए रखने का ऐतिहासिक प्रयत्न सिद्ध हुआ। हिंदू समाज में चेतना जागृत हुई और अस्पृश्यता का धीरे-धीरे अंत होने लगा। आगे चल कर गांधीजी की यह पहल हिंदू समाज में आने वाले सामाजिक रूपांतरण का आधार बनी।

गांधी सनातनी हिंदू थे। उन्हें हिंदू होने पर गर्व था। वे प्रार्थना सभाएँ करते थे। 'रघुपति राघव राजाराम' भजन का गायन प्रार्थना सभाओं में होता था। उन्होंने खुले रूप से धर्मांतरण का विरोध किया, पर इतना होने पर भी आज तक किसी ने उन्हें सांप्रदायिक नहीं कहा, उनके किसी भी कार्य ने हिंदू-मुस्लिम या हिंदू-ईसाई भेद को बढ़ाया नहीं, इसके विपरीत वे हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक के रूप में मान्य हुए। यह उनके व्यक्तित्व को रेखांकित करने योग्य विशेषता है।

भारत में सामान्यतः असाधारण सामर्थ्य और असामान्य क्षमताओं से युक्त उस व्यक्ति को जो समय की दिशा बदल दे तथा जिसके कार्य शताब्दियों तक व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करते हुए प्रेरणा देते रहें, 'अवतारी पुरुष' कहा जाता है। इस रूप में गांधी इस युग के अवतारी पुरुष थे। हमें समग्रता के साथ उन्हें समझना होगा।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)
प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

मानव संसाधन विकास मंत्री, भारत सरकार : डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास का सौभाग्य है कि प्रख्यात लेखक, कवि, शिक्षक, हिंदी सेवी डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' को केंद्र सरकार में मानव संसाधन विकास मंत्री के पद से सुशोभित किया गया है। उत्तराखंड के पौड़ी, गढ़वाल में स्थित पिनानी गाँव में 15 जुलाई, 1959 को जन्मे श्री निशंक लोकसभा के हरिद्वार संसदीय क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

श्री निशंक को देश की निर्वाचित संस्थाओं में कार्य करने का लंबा अनुभव है। वे वर्ष 1991 में पहली बार कर्णप्रयाग क्षेत्र से उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित हुए। 1997 व 1999 में उत्तर प्रदेश सरकार में मंत्री बने। वर्ष 2000 में अलग राज्य बनने के बाद उत्तराखंड की अंतरिम सरकार में कैबिनेट मंत्री और फिर 2007 में भी उत्तराखंड सरकार में कैबिनेट मंत्री बने। तत्पश्चात वे वर्ष 2009 में उत्तराखंड के मुख्यमंत्री बने। वर्ष 2014 में हरिद्वार सीट से लोकसभा के लिए निर्वाचित हुए और लोकसभा की सरकारी आश्वासन समिति के सभापति के रूप में दायित्व सँभाला।

शिक्षण के साथ श्री निशंक साहित्यिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहे। कोटद्वार की साहित्यांचल संस्था ने उन्हें 'निशंक' उपनाम दिया। उन्होंने अपने पत्रकारिता करियर की शुरुआत 'दैनिक जागरण' से की। उन्होंने कोटद्वार में हिमालयी सरोकारों पर आधारित पत्रिका 'नव राह, नव चेतना' निकाली और फिर 1986-87 में 'सीमांत वार्ता' समाचार पत्र आरंभ किया।

यह राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के लिए सुखद है कि श्री निशंक वर्ष 2016 में हमारे साथ एक लेखक के रूप में जुड़े। उनकी पुस्तक 'हिमालय में विवेकानंद' गहन शोध का परिणाम है। इस पुस्तक में स्वामी विवेकानंद के हिमालय क्षेत्र में आगमन, भ्रमण, निवास, तपस्या, अध्ययन एवं चिंतन तथा देवभूमि से अर्जित 'शक्तिपुंज' की क्रमबद्ध प्रमाणिक कथा है। कुल नौ अध्यायों में स्वामी विवेकानंद की प्रथम हिमालय यात्रा सहित उनके इस क्षेत्र में पुनः आगमन, प्रवास, तप, ज्ञानार्जन तथा विभिन्न महत्वपूर्ण पड़ावों, उपलब्धियों एवं वैश्विक संत से विभूषित होने और तत्पश्चात धर्म, सेवा एवं लोक कल्याण का समर्पित पुनीत कर्म का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

वैसे श्री निशंक बचपन से ही कविताएँ और कहानियाँ लिखते रहे। कविताओं का उनका पहला संकलन 'समर्पण' नाम से 1983 में प्रकाशित हुआ था। उनकी अब तक 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिसमें 14 कविता संग्रह, 12 कहानी संग्रह, 11 उपन्यास, चार पर्यटन ग्रंथ, छह बाल साहित्य, चार व्यक्तित्व विकास शामिल हैं। देश-विदेश में कई भाषाओं में उनके साहित्य का अनुवाद हुआ है।

केदारनाथ की त्रासदी के करुण पहलुओं को समेटते हुए श्री निशंक ने 'केदारनाथ आपदा की सच्ची कहानियाँ' पुस्तक में 21 अध्यायों के जरिये त्रासदी का आँखों देखा हाल बयाँ किया है। पुस्तक में इंसानियत के किस्सों को खासतौर पर रेखांकित किया गया है।

वह भारतीय और विदेशी विश्व-विद्यालयों में 'निशंक' साहित्य पर किये गए विभिन्न शोध कार्यों में शामिल रहे हैं तथा उनका लेखन भारतीय और विदेशी स्कूलों व विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में शामिल किया गया है। श्री निशंक को इंटरनेशनल ओपन यूनिवर्सिटी कोलंबो ने डीएफसी और डी.लिट. की मानद डिग्री प्रदान की है। इसके अलावा उन्हें कई अन्य विश्वविद्यालयों से भी पीएच.डी. और डी.लिट. की मानद डिग्री प्राप्त हुई हैं।

उन्हें युगांडा, नेपाल, मॉरीशस, श्रीलंका, जर्मनी, हॉलैंड, रूस, नार्वे, जापान, इंडोनेशिया, भूटान सहित यूरोपीय देशों में सम्मान मिला है। देश-विदेश की 300 से अधिक साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा राष्ट्र गौरव, भारत गौरव, प्राइड ऑफ उत्तराखंड एवं यूथ आइकन अवार्ड दिये गए। वे मॉरीशस के सर्वोच्च साहित्य सम्मान 'भारत गौरव सम्मान' से भी सम्मानित हैं।

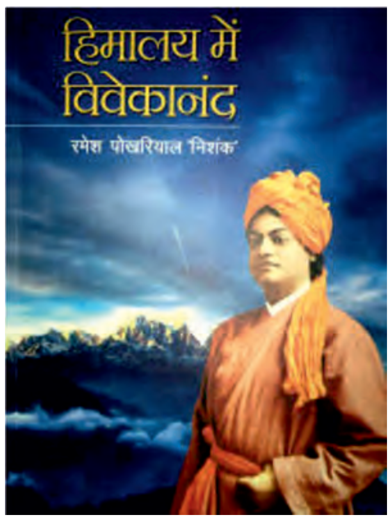

गांधीजी के व्यक्तित्व और महानता को उकेरतीं न्यास की गौरवमयी पुस्तकें

सत्य के पुजारी और अहिंसावादी महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और जीवन से संबंधित तथ्यों से दुनिया विदित है। उनका सम्मान भारत ही नहीं अखिल विश्व करता है। उनके जीवन से जुड़े सभी पहलुओं को उजागर करने के लिए हजारों पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने भी गांधीजी के व्यक्तित्व, उनके जीवन और अहिंसा, सत्याग्रह एवं समाज के जुड़ी कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो अलग-अलग आयु वर्ग के पाठकों के मन मोहती हैं।

1. महात्मा गांधी के विचार :

लेखक—आर.के. प्रभु और यू.आर. राव, *अनुवादक* : भवानी दत्त पांड्या।

हिंदी में अनुवादित इस पुस्तक का प्राक्कथन 12 मई, 1966 को आचार्य विनोबा ने लिखा, जो गांधी के पहले चुने हुए सत्याग्रही थे। गांधीजी के लोकोत्तर पुरुष होते हुए भी अपना मन परिपूर्ण तथा लोगों के सामने खुलकर रखा है, विनोबाजी ने ऐसा माना है। 1945 में प्रकाशित इस पुस्तक को नवजीवन प्रकाशन ने प्रकाशित किया था। भारत के पूर्व राष्ट्रपति और दार्शनिक राधाकृष्णन लिखते हैं कि यह पुस्तक जिसमें गांधीजी की आस्था और आचरण के केंद्रीय सिद्धांतों के विषय में उनके अपने ही लेखन से संगत उद्धरणों का संकलन किया गया है, आधुनिक व्यक्ति के मन में गांधीजी की स्थिति को सुस्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होगी।

गांधीजी सत्य के पुजारी थे, उन्होंने यह भी स्वीकार किया था कि उनका जीवन अंतर्विरोध से भरा रहा है। लेखक प्रभु को गांधीजी अपने लेखन की भावना से ओतप्रोत मानते थे। इस पुस्तक (अंग्रेजी की) के प्रूफ स्वयं गांधीजी ने पढ़े थे। गांधीजी अपने बारे में इस पुस्तक में विस्तार से चर्चा करते हैं। न संत, न पापी, सत्य की नीति आदि विषय पर संक्षिप्त लेकिन सार्थक टिप्पणियाँ हैं। सत्य, असत्य, आस्था, अहिंसा, सत्याग्रह, अपरिग्रह, श्रम, सर्वोदय, न्यासिता, ब्रह्मचर्य, स्वतंत्रता और लोकतंत्र, स्वदेशी, भाईचारा और प्रासंगिक विचार जैसे 15 विषयखंड इस पुस्तक को पठनीय बनाते हैं। गांधीजी के विचारों को जानने की यह एक प्रामाणिक एवं ज्ञानवर्धक पुस्तक है, जिसे नेशनल बुक ट्रस्ट ने गांधीजी की 125वीं जयंती के अवसर पर प्रकाशित किया था।

2. भिन्नता में एकता : गांधी का भारत

इस पुस्तक का प्रकाशन गांधी जन्मशताब्दी की राष्ट्रीय समिति की राष्ट्रीय एकीकरण उपसमिति के साथ हुई व्यवस्था के अनुसार 1968 में किया गया। इसकी भूमिका में देश के पूर्व राष्ट्रपति जाकिर हुसैन लिखते हैं—'गांधीजी शांति, सामंजस्य और समन्वय के लिए ही जिए और इन्हीं आदर्शों की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी कीमती जान न्योछावर कर दी।' बापू की कही हुई बातों के इस सुंदर से छोटे से संग्रह को जाकिर हुसैन स्कूल और कॉलेज के नौजवानों के लिए उपयोगी मानते हैं। इस

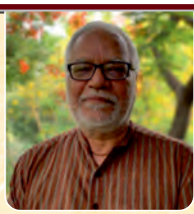

अनुराग चतुर्वेदी

जन्म : 11 जून, 1954, उदयपुर, राजस्थान।

शिक्षा : समाजशास्त्र में उपाधि।

लेखन : धर्मयुग, रविवार में संपादकीय सहयोग एवं हमारा महानगर (मुंबई) संपादक रहने के बाद स्वतंत्र लेखन, प्रिंट, रेडियो और टेलीविजन पत्रकारिता में सक्रिय, हाशिये पर पड़ी दुनिया (राजकमल प्रकाशन) का संपादन।

संपर्क : फ्लैट नं. 1002, टॉवर बी-2, गोदरेज प्लैटिनम,
विक्रोली (पूर्व) मुंबई-400069
मोबाइल : 9821004824

पुस्तक में फिर से गांधी विचारों की व्याख्या गांधीजी से कराई गई है। धर्म के बारे में इस पुस्तक में गांधीजी लिखते हैं, "हिंदुस्तान उन सभी का है जो यहाँ पैदा हुए हैं, यहीं पले हैं और जो किसी दूसरे देश को अपना नहीं मानते। इसलिए यह देश जितना हिंदुओं का है, उतना ही पारसियों, यहूदियों, ईसाइयों या मुसलमानों का है।" इस पुस्तक का अनुवाद सुमंगल प्रकाश ने किया है।

3. शब्द चित्र और श्रद्धांजलियाँ-गांधीजी

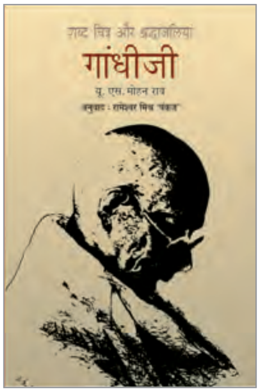

यू.एस.मोहन राव ने गांधीजी द्वारा इंडियन ओपिनियन, महात्मा गांधी की विचार दृष्टि, यंग इंडिया, नवजीवन (गुजराती), हरिजन में लिखे विभिन्न व्यक्तित्वों, महापुरुषों और विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियों को श्रद्धांजलियाँ दी हैं और शब्द चित्र चित्रण किए हैं, जिसे रामेश्वर मिश्र 'पंकज' ने नेशनल बुक ट्रस्ट के लिए 1994 में अनुवाद किया। इस पुस्तक की आठवीं आवृत्ति प्रकाशित हो चुकी है।

निजी पीड़ा, दोस्ती, राष्ट्रीय योगदान और विश्व यारी की बातें गांधीजी ने इन विवरणों में की हैं। दादाभाई नौरोजी के बारे में गांधीजी लिखते हैं, "दादाभाई जैसे व्यक्तियों को जो देश जन्म देता है, उसका भविष्य अंततः उज्ज्वल ही होने की आशा है।" तुलसीदास की रामायण के बारे में आप सभी ने सुना होगा। सत्संग का महत्व वहाँ सर्वाधिक प्रेरक रूप में वर्णित है, जिन्होंने कष्ट सहे, सेवा की और जीवन संपन्न कर चले गए, उनका सत्संग तलाशने लायक होता है। श्री गोखले ऐसे ही थे। वे नहीं रहे, पर उनके कार्य नहीं मरे हैं। उनकी आत्मा जीवित है। गणेश शंकर विद्यार्थी की मृत्यु पर गांधीजी लिखते हैं, "गणेश शंकर विद्यार्थी की शहादत तो ईर्ष्या योग्य है। उनका रक्त वह सीमेंट है, जो अंततः दोनों समुदायों को परस्पर जोड़ेगा। उन्होंने जो वीरता दिखाई है, वह आखिर में पत्थर दिल को भी पिघला कर रहती है।" अब्बास तैयबजी की याद वे बदरुद्दीन तैयबजी के चेहरे को याद करके करते हैं। यह पुस्तक जीवनियाँ पढ़ने वालों को पसंद आएगी और इतिहास की जानकारी प्राप्त करने वालों के लिए गांधी ज्ञान भी पर्याप्त है।

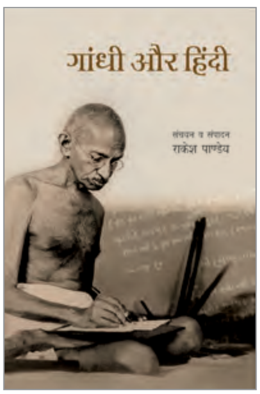

4. गांधी और हिंदी

इस पुस्तक का संचयन और संपादन राकेश पाण्डेय ने किया है। गोपाल प्रसाद व्यास को समर्पित यह पुस्तक 2015 में प्रकाशित हुई, जिसकी भूमिका स्व. चंद्रशेखर धर्माधिकारी ने लिखी और गांधी हिंदी दर्शन एवं गांधी विचार तथा साहित्य से साभार है। पुस्तक में गांधीजी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में प्रकाशित हिंदी इंडियन ओपिनियन में छपे रोचक विज्ञापनों से पुस्तक की शुरुआत होती है और गांधीजी के हिंदी से जुड़े कई महत्वपूर्ण वक्तव्य मयदस्तावेजों और तारीखों के साथ पेश किए गए हैं। 'हंस और प्रेमचंद संस्कृत एवं अरबी और हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू- तीनों का अर्थ एक ही भाषा है,' जो हरिजन सेवक में एक अगस्त, 1936 में प्रकाशित हुआ था। इसके दूसरे भाग में संस्मरण है जिसमें लोकमान्य हिंदी में बोले, जिसे सीताराम सेकसरिया ने लिखा है, संकलित है। हरिभाऊ उपाध्याय की हिंदी नवजीवन की कहानी भी है। पुस्तक में पत्र, लेख भी हिंदी से जुड़े विचारकों के हैं, जिनमें सेठ गोविंददास, काका कालेलकर, रामधारी सिंह दिनकर शामिल हैं। विविधता लिए यह पुस्तक गांधीजी के प्रति हिंदी के आग्रह को तर्कपूर्वक प्रकट करने में सफल रही है। पुस्तक 2015 में पहली बार प्रकाशित हुई।

5. बापू ने कहा था

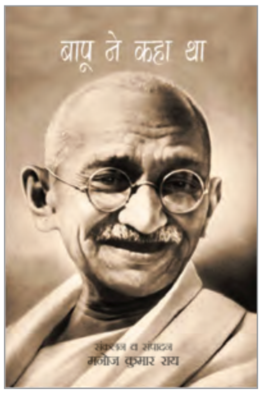

पिछले वर्ष प्रकाशित 'बापू ने कहा था' का संकलन और संपादन मनोज राय ने किया है। गांधीजी के विस्तृत एवं विशद वैचारिक भाषणों और लेखों के इस संकलन में 20 फरवरी, 1918 में मुंबई के भगिनी समाज के बीच गांधीजी ने स्त्री शिक्षा के बहाने भारतीय समाज में फैली तमाम बुराइयों को उद्धृत करते हुए स्त्रियों के लिए पर्याप्त और उचित शिक्षा की गंभीर वकालत की है। 'स्त्री शिक्षा' के साथ ही 20 अक्तूबर, 1917 में भड़ूच में राष्ट्रभाषा अंग्रेजी नहीं हिंदी का सारगर्भित लेख भी है। 19 भाषणों का यह संकलन बड़ी तन्मयता के साथ तैयार किया गया है।

6. स्वैच्छिक कार्य और गांधीवादी दृष्टि

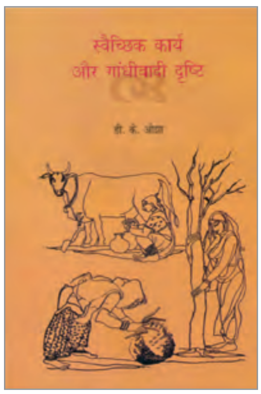

भारत के चर्चित तीन स्वैच्छिक आंदोलनों का अध्ययन करने वाली यह पुस्तक डी.के.ओझा ने लिखी है। इसके चित्र शांतना राज ने बनाए हैं और अनुवाद नेमिशरण मित्तल ने किया है। 1995 में प्रकाशित इस पुस्तक में चिपको आंदोलन, आनंदवत और बाबा आम्टे एवं सेवा आत्मगरिमा के लिए नारी का संघर्ष करने वाले एन.जी.ओ. की गांधीवादी दृष्टि से व्याख्या और विवरण हैं। सुंदरलाल बहुगुणा, बाबा आम्टे और ईला बहन की गांधी के प्रति आस्था और श्रद्धा है। यह पुस्तक तरुणों

में गांधीजी की स्वैच्छिक कार्य भावना पैदा करने के उद्देश्य से लिखी गई है। तीनों संस्थाओं के संघर्ष, समर्पण और निष्ठा के पीछे गांधी दृष्टि के कारण यह पुस्तक पठनीय और जानकारीपूर्ण है।

7. बा-बापू

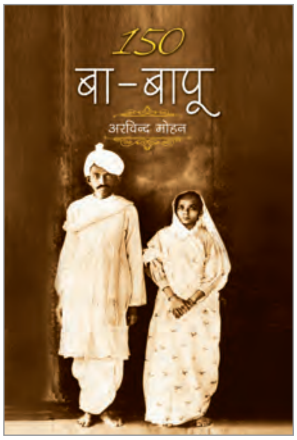

जाने-माने पत्रकार अरविंद मोहन ने महात्मा गांधी और उनकी पत्नी कस्तूरबा के एक साथ 150 वर्ष पूरे होने के अवसर पर दोनों के जीवन से जुड़े 150 किस्सों की माला पिरोई है, जो एक-एक पृष्ठ की है। ये किस्से रोचक, प्रेरक और सच्चे हैं। इस पुस्तक में गांधी से काल्पनिक सवाल पूछने और उनके जवाबों का जिक्र है। गांधीजी से पूछा गया कि आप किसे राष्ट्रपति देखना चाहते हैं, तो उन्होंने सीधा जवाब दिया कि वे इस सबसे ऊँची कुर्सी पर एक मेहतर की बेटी को बैठे देखना चाहते हैं। वर्ष 2018 में प्रकाशित यह पुस्तक बा पर भी उतनी सामग्री प्रस्तुत करती है, जितनी बापू पर। 'बा का खादी प्रेम' आलेख मार्मिक है। बा ने अपने बक्से में एक खादी साड़ी बचाकर रखी थी, वह अपनी मृत्यु पर अपने ऊपर डालने के लिए थी। जब वे बीमार हुईं, तो उन्होंने अपने करीबी लोगों को यह निर्देश दिया और उनकी आखिरी इच्छा पूरी भी की गई।

8. गांधी-पटेल : पत्र और भाषण, सहमति के बीच असहमति

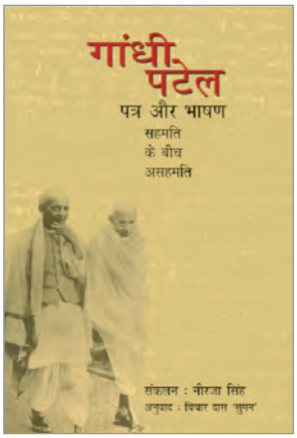

सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ महात्माजी के रिश्ते कैसे थे? प्रायः ये रिश्ते जटिल रूप में पेश किए जाते हैं। इन रिश्तों को स्वतंत्रता संग्राम के दो शलाखा पुरुषों के पत्रों और भाषणों के जरिए पुस्तक में नीरजा सिंह ने प्रस्तुत किया है, जिसका अनुवाद बिचारदास 'सुमन' ने किया है। नीरजा सिंह ने भूमिका में प्रो. विपिन चंद्रा का आभार प्रकट किया है, जिन्होंने वर्ष 2011 में प्रकाशित इस पुस्तक को आकार देने में लेखक की मदद की। इस पुस्तक में प्रस्तुतिकरण और विश्लेषण में इस बात का ध्यान रखा गया है कि यह टिप्पणियों और संदर्भों से बोझिल न हो जाए। यह पुस्तक नेताओं, घटनाओं और आंदोलनों के बारे में आम लोगों के मन की बहुत-सी गलतफहमियों को दूर करने में सहायक होगी। लेखक ने गांधी और पटेल के बीच के गहरे भावनात्मक संबंधों के साथ-साथ विवादित विषय की निष्पक्ष विवेचना इस पुस्तक में की है।

9. हिंदू धर्म क्या है?

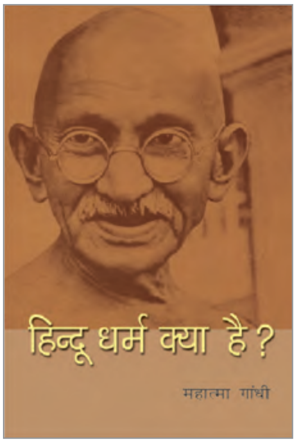

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की ओर से गांधीजी के 125वें जन्मदिन के अवसर पर हिंदू धर्म पर उनके समृद्ध चिंतन को सूक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह चयन 'यंग इंडिया', 'हरिजन' और 'नवजीवन' में गांधीजी द्वारा हिंदी और गुजराती में लिखे लेखों पर आधारित है। गांधीजी के चिंतन की प्रासंगिकता सार्वकालिक है, पर इसका महत्व इतिहास के वर्तमान चरण में विशेष है। यह पुस्तक गांधीजी के हिंदू धर्म में विश्वास को व्यापक रूप देती है। गांधीजी अपने को सनातनी हिंदू मानते थे, क्योंकि वे वेदों, उपनिषदों, पुराणों और हिंदू धर्मग्रंथों के नाम से प्रचलित सभी साहित्य में विश्वास रखते थे और इसलिए अवतारों एवं पुनर्जन्म में भी गांधीजी वर्णाश्रम और गौ रक्षा के साथ-साथ मूर्तिपूजा में भी विश्वास रखने की बात करते थे। इस पुस्तक में हिंदू धर्म में आई बुराइयों की चर्चा भी की गई है। गांधीजी के उदार मन से हिंदू धर्म को समझने के लिए यह पुस्तक आवश्यक है।

10. गांधी : एक जीवनी

गांधी की जीवनी के रचयिता कृष्ण कृपलानी नेशनल बुक ट्रस्ट के

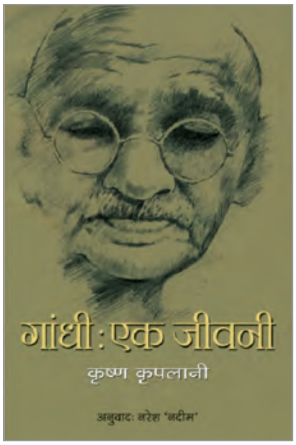

अध्यक्ष रह चुके हैं और गांधी एवं गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर के घनिष्ठ सहयोगी रहे हैं। यह पुस्तक महात्मा गांधी के जीवन और उनके काम का एक रोचक एवं सम्मोहक विवरण पेश करती है। गांधीजी की नैतिक शक्ति का उत्स कहाँ है, यह इस पुस्तक से ज्ञात होता है। भारत को आजादी दिलाने और दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ गांधीजी के संघर्ष की यह जीवनी प्रामाणिकता देती है। गांधीजी के वैदिक संस्कारों को यह जीवनी मूलतया न्यायालयी मानती है। यह जीवनी 1983 में प्रकाशित हुई और इसके 13 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। यह एक असाधारण मानव की एक अत्यंत संतोषप्रद जीवनी है। इस जीवनी के पढ़ने पर गांधीजी के जीवन के परिवर्तन और विकास दिखाई देते हैं।

कस्तूरबा गांधी

निशा नंदिनी भारतीय

शिक्षा : एम.ए. (तीन विषय–हिंदी, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र), बी.एड.।

संप्रति : 30 वर्षों तक शिक्षण कार्य।

लेखन व संपादन : सभी विधाओं में लगभग 35 वर्षों से लेखन, 30 पुस्तकें प्रकाशित, 'मुक्त हृदय' (बाल काव्य संग्रह), अमरावती विश्वविद्यालय महाराष्ट्र में बी.कॉम. प्रथम वर्ष पाठ्यपुस्तक 'गुंजन' में 'प्रयत्न' कविता संकलित। रामपुर उत्तर प्रदेश, डिब्रूगढ़, असम व दिल्ली आकाशवाणी व दूरदर्शन से परिचर्चा, वार्तालाप, काव्य गोष्ठी, नाटक आदि का प्रसारण।

पुरस्कार व सम्मान : वैश्विक साहित्यिक व सांस्कृतिक महोत्सव इंडोनेशिया और मलेशिया में साहित्य वैभव सम्मान, थाईलैंड के क्राबी महोत्सव में साहित्य वैभव अवार्ड से सम्मानित, विलक्षण संस्था द्वारा हरियाणा में राष्ट्रीय स्तर पर 'विलक्षण समाज सारथी' सम्मान, भारत साहित्य महोत्सव में 'नेपाल-भारत अंतरराष्ट्रीय साहित्य सम्मान'।

संपर्क : मोबाइल– 9435533394

ई-मेल– nishaguptavkv@gmail.com

अगर हम भारत के स्वतंत्रता संग्राम की बात करें तो हमारे मस्तिष्क में अनेक महिलाओं का नाम प्रतिबिंबित होते हैं, पर वह महिला जिनका नाम ही स्वतंत्रता का पर्याय बन गया है, वे हैं 'कस्तूरबा गांधी'। 'बा' के नाम से विख्यात कस्तूरबा गांधी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की धर्मपत्नी थीं और भारत के स्वाधीनता आंदोलन में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया। निरक्षर होने के बावजूद कस्तूरबा के अंदर अच्छे-बुरे को पहचानने का विवेक था। उन्होंने ताउम्र बुराई का डटकर सामना किया और कई मौकों पर तो गांधीजी को चेतावनी देने से भी नहीं चूकीं। महात्मा गांधी के अनुसार, 'जो लोग मेरे और बा के निकट संपर्क में आए हैं, उनमें अधिक संख्या तो ऐसे लोगों की है, जो मेरी अपेक्षा बा पर कई गुना अधिक श्रद्धा रखते हैं।' उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अपने पति और देश के लिए व्यतीत कर दिया। इस प्रकार देश की आजादी और सामाजिक उत्थान में कस्तूरबा गांधी ने बहुमूल्य योगदान दिया।

कस्तूरबा गांधी का जन्म 11 अप्रैल, 1869 में काठियावाड़ के पोरबंदर नगर में हुआ था। कस्तूरबा के पिता 'गोकुलदास मकनजी' एक साधारण व्यापारी थे और कस्तूरबा उनकी तीसरी संतान थीं। उस जमाने में ज्यादातर लोग अपनी बेटियों को पढ़ाते नहीं थे और विवाह भी छोटी उम्र में ही कर देते थे। कस्तूरबा के पिता महात्मा गांधी के पिता के करीबी मित्र थे और दोनों मित्रों ने अपनी मित्रता को रिश्तेदारी में बदलने का निर्णय कर लिया। कस्तूरबा बचपन में निरक्षर थीं और मात्र सात साल की अवस्था में उनकी सगाई छह साल के मोहनदास के साथ कर दी गई और तेरह साल की छोटी उम्र में उन दोनों का विवाह हो गया।

कस्तूरबा का शुरुआती गृहस्थ जीवन बहुत ही कठिन था। उनके पति मोहनदास करमचंद गांधी उनकी निरक्षरता से अप्रसन्न रहते थे और उन्हें ताने देते रहते थे। मोहनदास को कस्तूरबा का सजना, संवरना और घर से बाहर निकलना बिल्कुल भी पसंद नहीं था। उन्होंने 'बा' पर आरंभ से ही अंकुश रखने का प्रयास किया, पर ज्यादा सफल नहीं हो पाए।

विवाह के पश्चात पति-पत्नी सन् 1888 तक लगभग साथ-साथ ही रहे, परंतु मोहनदास के इंग्लैंड प्रवास के बाद वे अकेली

ही रहीं। मोहनदास के अनुपस्थिति में उन्होंने अपने बच्चे हरिलाल का पालन-पोषण किया। शिक्षा समाप्त करने के बाद गांधी इंग्लैंड से लौट आए, पर शीघ्र ही उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। इसके पश्चात

"चंपारण सत्याग्रह के दौरान वे भी गांधीजी के साथ वहाँ गईं और लोगों को सफाई, अनुशासन, पढ़ाई आदि के महत्व के बारे में बताया। इसी दौरान वे गाँवों में घूमकर दवा वितरण करती रहीं। खेड़ा सत्याग्रह के दौरान भी बा घूम-घूम कर स्त्रियों का उत्साहवर्द्धन करती रहीं।"

मोहनदास सन् 1896 में भारत आए और कस्तूरबा को अपने साथ ले गए। दक्षिण अफ्रीका जाने से लेकर अपनी मृत्यु तक 'बा' महात्मा गांधी का अनुसरण करती रहीं। उन्होंने अपने जीवन को गाँधी की तरह ही सादा और साधारण बना लिया था। वे गांधीजी के सभी कार्यों में सदैव उनके साथ रहीं। बापू ने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान अनेक उपवास रखे और इन उपवासों में वे अकसर उनके साथ रहीं और देखभाल करती रहीं।

दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने गांधीजी का बखूबी साथ दिया। वहाँ पर भारतीयों की दशा के विरोध में जब वे आंदोलन में शामिल हुईं तब उन्हें गिरफ्तार कर तीन महीने की कड़ी सजा के साथ जेल भेज दिया गया। जेल में मिला भोजन अखाद्य था। अतः उन्होंने फलाहार करने का निश्चय किया, पर अधिकारियों द्वारा उनके अनुरोध पर ध्यान नहीं दिए जाने पर उन्होंने उपवास किया, जिसके पश्चात अधिकारियों को झुकना पड़ा।

सन् 1915 में कस्तूरबा भी महात्मा गांधी के साथ भारत लौट आईं। कई बार जब गांधीजी जेल गए तब उन्होंने उनका स्थान लिया। चंपारण सत्याग्रह के दौरान वे भी गांधीजी के साथ वहाँ गईं और लोगों को सफाई, अनुशासन, पढ़ाई आदि के महत्व के बारे में बताया। इसी दौरान वे गाँवों में घूमकर दवा वितरण करती रहीं। खेड़ा सत्याग्रह के दौरान भी बा घूम-घूम कर स्त्रियों का उत्साहवर्द्धन करती रहीं।

सन् 1922 में गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद उन्होंने वीरांगनाओं जैसा वक्तव्य दिया और इस गिरफ्तारी के विरोध में विदेशी कपड़ों के परित्याग का आह्वान किया। उन्होंने गांधीजी का संदेश प्रसारित करने के लिए गुजरात के गाँवों का दौरा भी किया। 1930 में दांडी और धरासणा के बाद जब बापू जेल चले गए तब बा ने उनका स्थान लिया और लोगों का मनोबल बढ़ाती रहीं। क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण 1932 और 1933 में उनका अधिकांश समय जेल में ही बीता।

सन् 1939 में उन्होंने राजकोट रियासत के राजा के विरोध में भी सत्याग्रह में भाग लिया। वहाँ के शासक ठाकुर साहब ने प्रजा को कुछ अधिकार देना स्वीकार किया था, परंतु बाद में वे अपने वादे से मुकर गए।

'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान अंग्रेजी सरकार ने बापू समेत कांग्रेस के सभी शीर्ष नेताओं को नौ अगस्त, 1942 को गिरफ्तार कर लिया। इसके पश्चात बा ने मुंबई के शिवाजी पार्क में भाषण करने का निश्चय किया, किंतु वहाँ पहुँचने पर उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया और पूना के आगा खाँ महल में भेज दिया गया। सरकार ने महात्मा गांधी को भी यहीं रखा। उस समय वे अस्वस्थ थीं। गिरफ्तारी के बाद उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया और कभी भी संतोषजनक रूप से नहीं सुधरा।

जनवरी 1944 में उन्हें दो बार दिल का दौरा पड़ा। उनके निवेदन पर सरकार ने आयुर्वेद के डॉक्टर का प्रबंध भी कर दिया और कुछ समय के लिए उन्हें थोड़ा आराम भी मिला, पर 22 फरवरी, 1944 को उन्हें एक बार फिर गंभीर दिल का दौरा पड़ा और बा हमेशा के लिए यह दुनिया छोड़कर चली गईं।

बा-बापू के जीवन से जुड़े कुछ रोचक प्रसंग

अरविंद मोहन

शिक्षा : एम.ए.।

संप्रति : वरिष्ठ पत्रकार, लेखक और अनुवादक।

लेखन कार्य : जनसत्ता, इंडिया टुडे और हिंदुस्तान में करीब ढाई दशक की पत्रकारिता करने के बाद अभी लोकनीति, सी.एस.डी.एस. में भारतीय भाषा कार्यक्रम में संपादक हैं। इन्होंने, पत्रकारिता, मजदूरों के पलायन और भारतीय जल संचयन प्रणालियों पर किताब लिखने के अलावा उदारीकरण और गुजरात दंगों पर 'गुलामी का खतरा' (1993) तथा 'दंगा नहीं नरसंहार' पुस्तकों का संपादन। पंजाब जाने वाले बिहारी मजदूरों की स्थिति का अध्ययन, देश की पारंपरिक जल संचय प्रणालियों पर पुस्तक का संपादन और गांधी के चंपारण सत्याग्रह पर उनकी पुस्तक चर्चित रही।

यह कस्तूरबा और गांधी के जन्म का डेढ़ सौवाँ साल है। लगभग 60 साल के साथ वाला दोनों का जीवन कैसा चला, कितना फलदायी रहा, दोनों में परस्पर कितना स्नेह और आदर भाव रहा, यह सब विगत डेढ़ सौ सालों में कई तरह से देखा-परखा गया है। और कहना न होगा कि हर देखने वाले को उसमें कुछ-न-कुछ विशेष लगा। गांधीजी ने खुद भी अपनी आत्मकथा लिखकर अपने पक्ष का काफी कुछ सामने रखा, जिसे पढ़कर दुनिया आज तक हैरान होती है। कुछ रोचक प्रसंगों के माध्यम से बा और बापू के जीवन, व्यक्तित्व और कामों में झाँकने की एक कोशिश गई है।

हठीले बापू, महा-हठीली बा

बा के नाम से सारे गांधीवादियों और मुल्क में जानी गईं कस्तूरबा उम्र में मोहनदास से कुछ बड़ी थीं जो सामान्य चलन न था, पर भाइयों के संग शादी के चक्कर में छोटे मोहनदास भी आ गए और उनकी शादी हो गई। पर उम्र में कस्तूरबा जितनी कम बड़ी थीं, जीवनभर गांधी को सहयोग देने और हर हाल में उनके साथ खड़े रहने के मामले में उससे कई गुना ज्यादा बड़ी साबित हुईं। बा दक्षिण अफ्रीका से शायद बापू से भी ज्यादा बदलकर लौटी थीं।

दक्षिण अफ्रीका के लोगों का अब दावा है कि भारत ने उनको मोहनदास करमचंद गांधी दिया था और उन्होंने उस व्यक्ति को दुनिया में महात्मा गांधी बनाकर लौटाया। और हम वहाँ गांधी के जीवन में घटी घटनाओं तथा उनके अंदर आने वाले बदलावों के बारे में जानते हैं, पर गांधीजी ने उन बदलावों के अनुरूप कस्तूरबा को कैसे बदला, या राजी किया, इसके किस्से कम लोग जानते हैं। पर सामान्य इच्छाओं वाली बा ने अपने पति के साथ अपने जीवन की नई दिशा को, अपने बच्चों के भविष्य को, अपनी आने वाली पीढ़ी के जीवन को, अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं को किस तरह दबाया, गांधी से इन मामलों पर मतभेद को कैसे सुलटाया, यह किसी के ध्यान में नहीं रहा। आज यह कई लेखकों की कल्पना को उकसाने

वाला साबित हुआ है। इसीलिए आज बा पर कई उपन्यास आ गए हैं जिनमें एक स्त्रीवादी स्वर भी होता है।

पर मजेदार बात यह है कि इन बदलाओं और हर मुद्दे पर हुए टकराव की चर्चा खुद गांधीजी ने ही सबसे विस्तार से और प्रेम से अपनी आत्मकथा और दक्षिण अफ्रीका वाली अपनी किताब में की है। उन्होंने खुद लिखा है कि 'मुझे आरंभ में जो अनुभव हुआ, उसके आधार पर कहूँ तो बा बहुत हठीली है। मैं दबाव डालता था तो भी वह अपना चाहा ही करती थी। इससे हमारे बीच कड़वाहट भी बनी रही। लेकिन मेरा जनसेवा का जीवन जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे-वैसे बा का मुझमें समाने का गुण भी खिलता गया और वह मेरे काम में समाती गई।' गांधीजी को लगता है कि यह हिंदुस्तानी पत्नी वाला गुण ही था।

बा की पहली जेल-यात्रा

1913 में दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने ईसाई धर्म के अनुसार और पंजीकृत न हुई सभी शादियों को कानून की दृष्टि से अमान्य बना दिया। इसका सीधा-सा मतलब था कि हिंदू, मुसलमान, पारसियों की शादियों को सरकारी कानून स्वीकार ही नहीं कर रहा है। इसका व्यावहारिक मतलब तो यह था हिंदुस्तानियों को वीसा के कागजात बनवाने समेत वे सारे काम कराने मुश्किल हो जाते जिनमें पत्नी की भी भागीदारी होनी थी। पर कई मामलों में गोरी सरकार को झुका चुके गांधी और हिंदुस्तानियों की उनकी मंडली ने इसका एक और अर्थ दिया कि इस कानून से विवाहित हिंदुस्तानी औरतों का दर्जा पत्नी का न रहकर रखैल भर का हो जाएगा। इसने इसे ज्यादा संवेदनशील बना दिया और इस पर एक बड़ी लड़ाई शुरू हुई। सत्याग्रह हुआ और गांधी पहली बार बड़ी संख्या में महिलाओं को इस सत्याग्रह में शामिल करने में सफल रहे। और इस मामले में भी उन्होंने शुरुआत घर से की।

“बा राजी हुईं तो गांधी ने उनसे उपवास कराना और नीम का रस पिलाना शुरू किया। चौदह दिनों तक यह क्रम चला और बा कमजोर होती गईं। पर इस बीच गांधी ने उनका सारा काम किया। सुबह दातुन कराने से लेकर पखाना-पेशाब कराना, अपने हाथों से बा को उठाकर बाहर लाना और धूप में लिटाना और हर काम करते थे। दिनभर वे बा की खाट के पास बैठे उसे धूप से बचाने के लिए यहाँ-वहाँ खिसकाते रहते थे। सूजे हुए शरीर पर नीम के तेल की मालिश करते थे। वे सब कुछ कर लेते थे, पर उनको चोटी बनाना नहीं आता था। भतीजे छगनलाल की बहू काशीबा यह काम करती थीं। वे सब करने को तैयार थीं, पर गांधी उन्हें बाकी कुछ करने न देते थे। एक दिन उनको आने में देर हुई तो बापू ने खुद से चोटी बनाना भी शुरू कर दिया था।”

एक दिन रोटी बनाती कस्तूरबा से उन्होंने कहा, “आज तक तू मेरी ब्याही हुई पत्नी थी। अब तू मेरी ब्याही हुई पत्नी नहीं रही।” जाहिर है बात बा को चुभ गई। फिर विरोध की बात आई। अकेले पुरुषों की जगह स्त्रियों के विरोध की जरूरत मानी गई। फिर विरोध की कीमत की बात भी आई। इससे ठीक पहले बा का एक बड़ा ऑपरेशन हुआ था। वे पथ्य-परहेज से रह रही थीं और काफी कमजोर भी थीं। पर गांधी उनको आंदोलन के सिलसिले में जेल जाने तक को कह रहे थे। बा जेल के सवाल पर तो नहीं डरीं, लेकिन जेल के भोजन को लेकर जरूर चिंतित हुईं। तब गांधी ने कहा कि जेल का खाना न खाकर तुम फल खा लेना। पर जेल में फल कौन देगा। गांधी ने कहा कि फल न दें तो उपवास रखना। हुआ भी यही। बा समेत बड़ी संख्या में महिलाओं ने इस काले कानून का विरोध करते हुए जेल यात्रा की। दक्षिण अफ्रीका सरकार के लिए इतनी महिला कैदियों को संभालना मुश्किल काम साबित हुआ। और बा ने सचमुच फलों की माँग को लेकर उपवास रखा, जिसके चलते पाँच दिन बाद जेल प्रशासन झुका और बा को फल खाने को मिले। पर फल इतने कम होते थे कि बा का पेट नहीं भरता था। इस प्रकार बा के जेल जाने और अनशन करने की शुरुआत तो हुई, पर तीन महीने जेल में रहकर वे इतनी कमजोर हो गई थीं कि खुद गांधी उन्हें देखकर बहुत दुखी हुए और बोल पड़े, “तू तो बहुत बूढ़ी हो गई।”

बा के सेवक बापू

बा जीवनभर गांधी की सबसे भरोसेमंद और मजबूत सहयोगी ही नहीं, अच्छी सेवक भी थीं और गांधी की हर छोटी-बड़ी जरूरत का ख़याल रखती थीं। सफाई के मामले में वे गांधी से इक्कीस ही थीं। उनकी सेवा-टहल और सफाई की आदत गांधी को पड़ गई थी। उनकी मृत्यु के बाद इस भूमिका में आई गांधी के चचेरे भाई की पोती मनु ने अपनी किताब 'गांधी मेरी माँ' में लिखा है कि मैं लाख कोशिश करके भी अपने काम और सफाई से बापू को संतुष्ट नहीं कर सकती थी। पर गांधी ने बा की कितनी सेवा की, इसकी चर्चा प्रायः नहीं होती। शादी कानून वाले सवाल पर गांधी ने जब दक्षिण अफ्रीका में आंदोलन छेड़ा था, उसके ठीक पहले बा के गर्भाशय का एक मुश्किल ऑपरेशन हुआ था। बा कमजोर थीं तभी गांधी ने आंदोलन में उनको और काफी महिलाओं को शामिल करके उनके जेल जाने का रास्ता बना दिया। जेल में उपवास और बाद में आधा पेट फल खाकर तीन महीने गुजारने में बा बहुत कमजोर हो गईं। जेल से बाहर आने पर भी हाजमा खराब रहा। उल्टी और शरीर फूल जाने की शिकायत बढ़ी, तब गांधी ने डॉक्टरों की मदद ली। फायदा न हुआ। फिर उन्होंने बा को राजी किया कि वे उनका इलाज मानें। बा राजी हुईं तो गांधी ने उनसे उपवास कराना और नीम का रस पिलाना शुरू किया। चौदह दिनों तक यह क्रम चला और बा कमजोर होती गईं। पर इस बीच गांधी ने उनका सारा काम किया। सुबह दातुन कराने से लेकर पखाना-पेशाब कराना, अपने हाथों से बा को उठाकर बाहर लाना और धूप में लिटाना जैसे हर काम करते थे। दिनभर वे बा की खाट के पास बैठे उसे धूप से बचाने के लिए यहाँ-वहाँ खिसकाते रहते थे। सूजे हुए शरीर पर नीम के तेल की मालिश करते थे। वे सब कुछ कर लेते थे, पर उनको चोटी बनाना नहीं आता था। भतीजे छगनलाल की बहू काशीबा यह काम करती थीं। वे सब करने को तैयार थीं, पर गांधी उन्हें बाकी कुछ करने न देते थे। एक दिन उनको आने में देर हुई तो बापू ने खुद से चोटी बनाना भी शुरू कर दिया था। बालों में कंघा करके उन्होंने

चोटी बनाने की तैयारी शुरू की तभी काशीबा आ गई। पर गांधी की यह सेवा व्यर्थ न गई और दो हफ्ते में कस्तूरबा न सिर्फ स्वस्थ हुई, बल्कि उनका शरीर पहले से अच्छा हो गया।

बा को न पढ़ाने की भूल

गांधी के आलोचक और कस्तूरबा के प्रशंसकों की एक बहुत शिकायत रहती है कि गांधी ने खुद तो बहुत पढ़ाई की और डिग्रियाँ लीं, जबकि कस्तूरबा (और बच्चों) को डिग्री और पढ़ाई से दूर रखा। बच्चों को डिग्री वाली पढ़ाई से दूर रखने वाली बात तो सही है, पर शिक्षा से दूर नहीं रखा। हाँ, कस्तूरबा के मामले में यह आरोप एक हद तक सही है। आलोचक कस्तूरबा के नाम पर आज बालिका विद्यालय खोलने की आलोचना करते हैं और ज्योतिबा फुले का उदाहरण देते हैं जिन्होंने सबसे पहले अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को शिक्षित किया और फिर दोनों ने शिक्षा और समाज सुधार का काम किया। एक तो ऐसी तुलना का कोई मतलब नहीं होता। दूसरे गांधी और फुले के काम की भी तुलना नहीं है। पर बा के लगभग निरक्षर होने की बात अपनी जगह है। बा मुश्किल से गुजराती पढ़ पाती थीं और चिट्ठी लिखना व दस्तखत भर करना जानती थीं। पर वह दक्षिण अफ्रीका जाकर अंग्रेजी बोलना सीखना हो या चंपारण रहकर भोजपुरी सीखना, इस काम में गांधी से कम न थीं। बल्कि दस महीने रहकर भी गांधी भोजपुरी नहीं सीख पाए और उनसे कम समय रहकर ही बा सीख गईं।

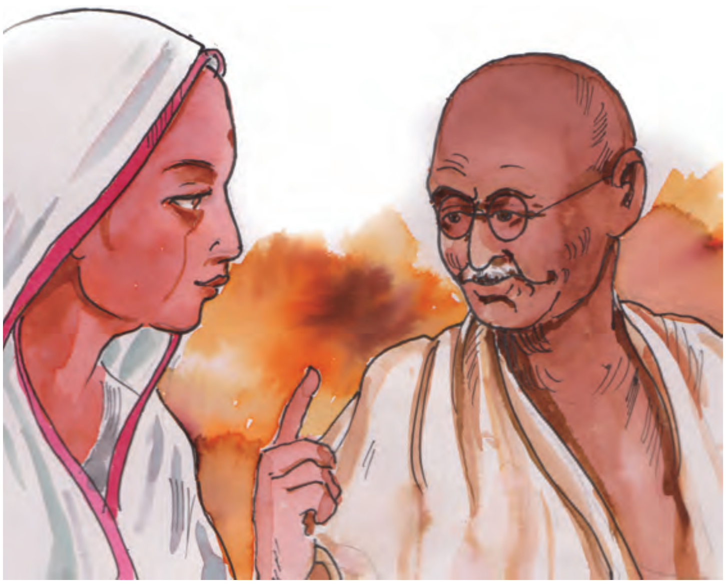

पर बा का न पढ़ना किसी से भी ज्यादा बापू को अखरता था। और बा ने भले कभी इस बात की शिकायत न की हो, पर गांधी ने अपनी आत्मकथा में इस बारे में विस्तार से सफाई दी है, अफसोस जताया है। उन्होंने लिखा है कि मैं मानता था कि पत्नी को पढ़ा-लिखा होना ही चाहिए। पर जवानी में भोग-विलास के मोह ने मुझे यह करने न दिया। तब दिन में बड़े-बूढ़ों के होते पर्दा-प्रथा के चलते पत्नी की ओर देखना भी गुनाह था और रात के एकांत में भोग के मोह ने यह काम नहीं करने दिया या जो प्रयास किया, उससे खास फायदा नहीं हुआ। और जब विषय भोग के नींद से जागा तब सार्वजनिक जीवन में इतना उलझ गया था कि बा को पढ़ाने के लिए समय देने की स्थिति में न था। मैं मानता हूँ कि यदि मेरा प्रेम वासना से दूषित न होता तो आज वह विदुषी स्त्री बन गई होती। गांधी ने यह भी लिखा है कि अपनी इस कमजोरी का गुस्सा मैं कई बार बा पर उतारता था, उसे मायके भेज देता था। पर जल्दी ही मेरी समझ में आ गया कि ऐसा करना सिर्फ मेरी मूर्खता थी।

बापू की भी नहीं मानी बा ने

गांधी ताउम्र तरह-तरह के प्रयोग करते रहे। खाने-पहनने से लेकर हर चीज में। और किसी और से अपनी बात मनवाने के पहले वे अपने ऊपर प्रयोग करने से नहीं चूकते थे। इसमें कई बार उन्होंने खुद को संकट में भी डाला और कई बार प्रयोग का 'शिकार' रहने वाली बा को भी। इससे उलट बा ने उन्हें कई बार संकट से उबारा जिसमें डॉक्टर की सलाह पर गाय का दूध न पीने की उनकी जिद को बकरी के दूध से तुड़वा कर उनकी जान बचाना भी शामिल है। गांधी जब अन्न न खाने और सिर्फ मेवे तथा शहद खाने का प्रयोग कर रहे थे तब बा सामान्य खाना खाती थीं। चंपारण आने पर जब गांधी को शहद और मेवा खाना महँगा लगा तो पहले मूँगफली और बाद में उबली सब्जी और भात खाने लगे, पर दिनभर के भोजन में ज्यादा- से-ज्यादा पाँच चीजों-मसाले समेत, का प्रयोग ही करते थे। पर एक बार दक्षिण अफ्रीका में जब बा की बीमारी नहीं सुधर रही थी तब जाने किस किताब से पढ़कर गांधी ने बा को नमक और दाल छोड़ने की सलाह दी। बा इस पर राजी न थीं। कई तरह से तर्क दिए गए, पर वे राजी ही नहीं हो रही थीं। गांधी की बातों से ऊबकर उन्होंने कह दिया कि नमक और दाल तो ऐसी चीज हैं जिसे कोई कहे तो आप भी नहीं छोड़ सकते। गांधी को लगा उनका दाँव सही बैठ गया। उन्होंने तुरंत बा की शर्त मानने का एलान कर दिया और कहा अब तू नमक और दाल छोड़े, न छोड़े मैं एक साल तक ये चीजें नहीं खाऊँगा। बा फँस गईं। वह बोल पड़ीं कि आप अपना खाना चालू रखिए, मैं नहीं खाऊँगी। आप अपना निश्चय छोड़िए क्योंकि वह मेरे लिए नमक-दाल छोड़ने से ज्यादा बड़ी सजा हो जाएगी। पर गांधी न माने। रो-धोकर बा ने गांधी का इलाज चलाया। वे ठीक भी हुईं। गांधी समझाते रहे कि अब नमक-दाल छोड़ ही दो, पर बा नहीं मानीं। उन्होंने सामान्य खाना शुरू किया, लेकिन गांधी ने अपना फैसला जारी रखा और साल की सीमा भी कम पड़ गई।

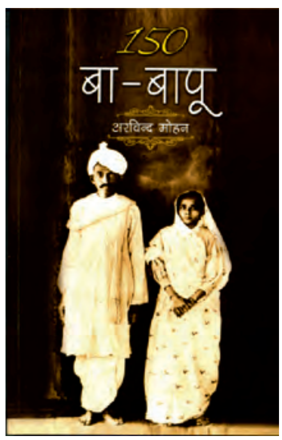

(राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तक '150 बा-बापू' से साभार)

गांधी और जिन्ना

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन और राष्ट्रीय आंदोलन को गांधी और जिन्ना ने सर्वाधिक रूप से प्रभावित किया है। कोई भी अध्येता आधुनिक भारत के संदर्भ में विचार करते समय गांधी और जिन्ना के विचारों और भूमिका को नजरअंदाज नहीं कर सकता। दोनों का योगदान स्थायी प्रकृति का है। एक ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व किया और ब्रिटिश सत्ता से भारत को स्वतंत्रता दिलाई तथा दूसरे ने दुनिया में 'पाकिस्तान' नामक एक नए राज्य की स्थापना कराई। एक 'राष्ट्रपिता' कहलाया, दूसरे को 'कायद-ए-आजम' कहा गया।

जिन्ना के परदादा राजकोट रियासत में आकर बसे थे। इसी रियासत में गांधी का परिवार भी रहता था। इस रूप में दोनों का संबंध गुजरात की एक ही रियासत से था। गांधी जिन्ना से सात वर्ष बड़े थे। गांधी का बचपन हिंदू वैष्णव परिवार में बीता, जबकि जिन्ना का बचपन खोजा मुस्लिम परिवार में बीता जो मुस्लिमों में भी अल्पसंख्यक हैं। दोनों माध्यमिक शिक्षा के बाद बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने लंदन गए।

गांधी के बचपन को सत्यप्रेमी हरिश्चंद्र और मातृ-पितृभक्त श्रवण कुमार के जीवन चरित्र ने प्रभावित किया, जबकि जिन्ना किस जीवन चरित्र से बचपन में प्रभावित हुए इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए जाते समय गांधी की माँ पुतलीबाई ने उन्हें कुछ प्रतिज्ञाएँ दिलाईं जिनका पालन गांधी ने किया। जिन्ना की माँ ने कोई प्रतिज्ञा तो नहीं दिलाई, पर उन्होंने यह आशंका व्यक्त की कि इंग्लैंड में कहीं उनका बेटा (जिन्ना) किसी अंग्रेज लड़की के साथ शादी न कर ले। अतः वे इंग्लैंड जाने के पूर्व जिन्ना की शादी का आग्रह करने लगीं। पहले तो जिन्ना ने अपनी माँ की इस बात का विरोध किया, पर माँ की इच्छा का सम्मान करते हुए वे इंग्लैंड जाने के पूर्व पारंपरिक तरीके से विवाह करने को तैयार हो गए और उनका विवाह हुआ। बैरिस्टर होकर भारत आने के बाद दोनों का कार्यक्षेत्र भारत रहा। दोनों में केवल इतनी ही समानता है। इसके बाद दोनों के विचार, प्रेरणाएँ, लक्ष्य, जीवन सब कुछ अलग-अलग हैं।

गांधी का जीवन एक खुली किताब है। सार्वजनिक जीवन में आने के पूर्व के अपने जीवन के संबंध में गांधी ने सभी बातें अपनी आत्मकथा में लिखी हैं। जितनी सच्चाई से गांधी ने अपने बारे में लिखा है उतना लिख पाना बहुतों के बस की बात नहीं है। इतने स्पष्ट रूप से अपने जीवन और आदतों को खुला कर देना बहुत बड़े साहस और असाधारण स्वविश्वास की अपेक्षा करता है। जिन्ना ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी इसलिए जिन्ना का निजी जीवन एक रहस्यमय और अबूझ पहेली जैसा लगता है। उन्होंने किसी को अपने निजी जीवन में झाँकने तक नहीं दिया।

गांधी के कार्यों का दायरा बहुत व्यापक है। वे एक साथ राजनेता, समाजसुधारक, संत, धार्मिक आस्थाओं वाले व्यक्ति, पत्रकार, लेखक, वकील, पथप्रदर्शक, तत्वज्ञानी थे। लुई फिशर का कहना है, 'हरिजन' नामक पत्र में एक दिन गांधी बड़ी-से-बड़ी अंतरराष्ट्रीय समस्या पर विचार करते थे तथा उसी हरिजन पत्र में दूसरे दिन 'मूँगफली' जैसी छोटी चीज पर विचार करते थे। गांधी के विचारों का दायरा बहुत बड़ा था।

जिन्ना के कार्यों का दायरा गांधी की तुलना में सीमित था। वे समाज सुधारक नहीं थे, पत्रकार और लेखक भी नहीं थे। धार्मिक विश्वासों का उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था। वे शुद्ध वकील और राजनीति के व्यक्ति थे। उनकी विशेषता उनकी स्पष्टवादिता और रूखापन थी।

गांधी के लिए राजनीति आत्म-साक्षात्कार का माध्यम थी। अपने आत्मचरित्र की सन् 1925 में लिखी प्रस्तावना के चतुर्थ अनुच्छेद में गांधी लिखते हैं, "मैं जिसे प्राप्त करने के लिए उत्कंठित हूँ—30 वर्ष से जिसे प्राप्त करने के लिए मैंने प्रयास किया है—वह है आत्मसाक्षात्कार ईश्वर के साथ मिलन, मोक्ष। इसी लक्ष्य के

प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

मार्च 1939 में जन्मे डॉ. गोविंद प्रसाद शर्मा ने राजनीति विज्ञान से एम.ए. और पीएच.डी. की है। उन्होंने महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय एवं कमलाराजा कन्या महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में अपनी सेवाएँ दीं। वह उच्च शिक्षा विभाग के ग्वालियर-चंबल डिवीजन में अतिरिक्त निदेशक भी रहे। उन्होंने मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक और मध्य प्रदेश बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन के उपाध्यक्ष के तौर पर भी काम किया। उन्होंने छह से अधिक अकादमिक पुस्तकों का लेखन किया है। साथ ही, उन्होंने कुछ संचयनों का संपादन भी किया है। उनके कई शोध पत्र भी प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में श्री शर्मा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं।

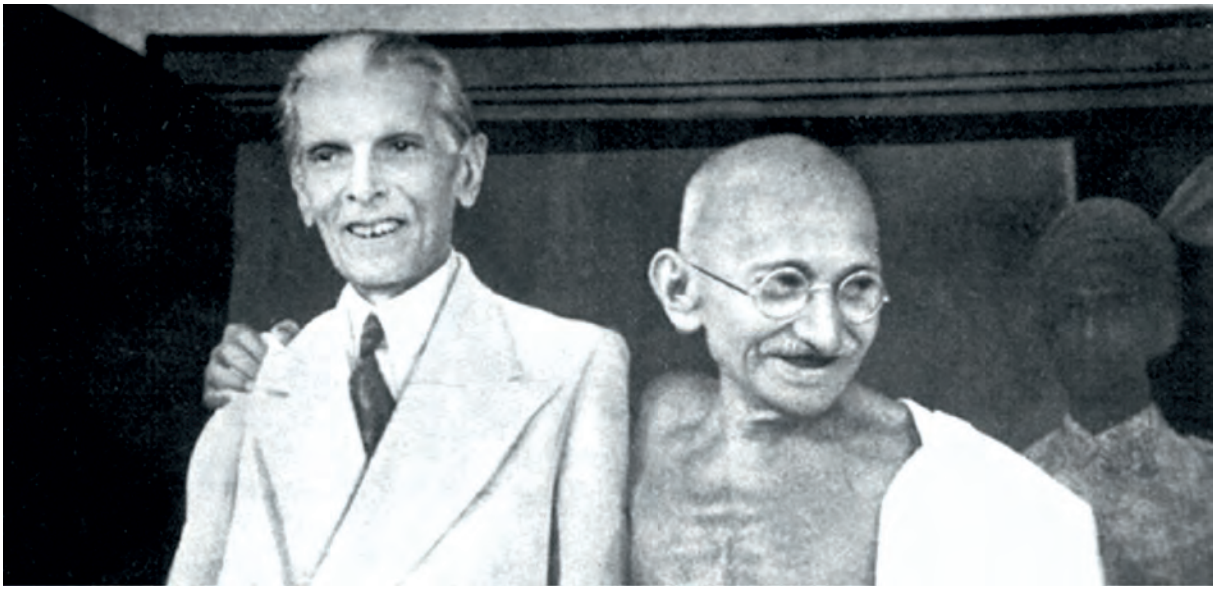

लिए मैं जी रहा हूँ, काम कर रहा हूँ। मेरा अस्तित्व उसी के लिए है। मेरा संपूर्ण लेखन, मेरे भाषण, राजकीय क्षेत्र के सारे साहस इस लक्ष्य की दिशा में ही ले जाने वाले हैं।" स्पष्ट है, राजनीति के प्रति गांधी का नजरिया ईश्वर सेवा और इस रूप में आत्मसाक्षात्कार था, जबकि जिन्ना के लिए राजनीति महत्वाकांक्षा थी। गांधी ने मजहब का इस्तेमाल राजनीति के लिए नहीं किया, जबकि जिन्ना ने मजहब का प्रयोग राजनीति के लिए किया।

गांधी सात्विक प्रकृति और प्रवृत्ति के शाकाहारी वैष्णव थे। जिन्ना शाकाहारी नहीं थे। गांधी के जीवन में सिगरेट का कोई स्थान नहीं था, जबकि जिन्ना एक दिन में औसतन 50 के करीब 'क्रेवन ए सिगरेट' पीते थे। गांधी, शांत और रहस्यमयी थे। रहस्यमयी तो जिन्ना भी थे, पर वे शांत नहीं थे। गांधी ने भारत आने के बाद भारत की गरीबी को गहराई से अनुभव किया और सिले हुए कपड़े पहनने बंद कर दिए। उन्होंने एक धोती पहनना और उसी के आधे भाग को ओढ़ना प्रारंभ किया। यह उनकी वेशभूषा बनी, जिन्ना 'सेविल रो सूट' पहनते थे। 1937 के मुस्लिम लीग अधिवेशन (लखनऊ) में उन्होंने पहली बार लंबी पंजाबी शेरवानी पहनी। इसी समय उन्होंने ईरानी भेड़ की चमड़ी से बनी काली टोपी (जिस पर अधिवेशन के लिए जाते समय उनकी नजर पड़ी), पहनी। बाद में यह पोशाक उनके साथ स्थायी रूप से जुड़ गई।

गांधी जब दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के स्वाभिमान की लड़ाई लड़ रहे थे तब जिन्ना भारत में उदारवादियों के साथ अपनी राजनीतिक जमीन तलाश रहे थे। हिंदुस्तान की आजादी के लिए अंग्रेजों से संघर्ष के दौरान गांधी कई बार जेल गए। यदि उनके जेल जाने की कुल अवधि जोड़ी जाए तो वह लगभग छह वर्ष से अधिक होगी। जिन्ना ने भी ब्रिटिश शासन का विरोध किया, पर वे एक घंटे के लिए भी जेल नहीं गए। अलवत्ता जिन्ना ने अंग्रेज अधिकारियों से मिलकर संघर्ष किया, गांधी ने अंग्रेजों की नीतियों के खिलाफ खुला संघर्ष किया।

राजनीतिक दृष्टि से गांधी और जिन्ना के संबंध कभी सामान्य और सहज नहीं रहे। यद्यपि दोनों स्पष्टतः गोपाल कृष्ण गोखले से जुड़े थे तथापि दोनों की कार्य पद्धति, लक्ष्य और उद्देश्यों के प्रति दृष्टिकोण पृथक-पृथक थे। जिन्ना और गांधी के बीच मतभेद उस समय जाहिर हुए जब गांधी इंग्लैंड से भारत लौटे। महात्मा गांधी के भारत आगमन पर गुर्जर सभा ने गांधी के सम्मान में एक गार्डन पार्टी का आयोजन किया। इस कार्यक्रम में गांधी ने जिन्ना को मुस्लिम नेता के रूप में संबोधित किया। जिन्ना को गांधी का यह संबोधन अच्छा नहीं लगा। जिन्ना स्वयं को पूरे देश का नेता मानते थे। यह पहला अवसर था जब जिन्ना के मन में गांधी के प्रति चिढ़ पैदा हुई। गांधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश और उनकी लोकप्रियता के कारण अनेक नेताओं के समीकरण गड़बड़ा गए, जिन्ना भी उनमें से एक थे। जिन्ना महात्मा को नापसंद करते थे, पर उनके समान महत्ता प्राप्त करने के अवसर को नहीं।

इस घटना के बाद लगभग सभी मुद्दों पर जिन्ना और गांधी के बीच असहज रिश्ते देखने को मिलते रहे हैं। गांधी ने प्रथम विश्व युद्ध के समय में फौज में भर्ती होने की सलाह भारतवासियों को दी, जिन्ना ने फौजी भर्ती का विरोध किया। गांधी ने जब असहयोग आंदोलन का आह्वान किया तो जिन्ना ने अन्य नेताओं के साथ विरोध किया। 1920 में गांधी ने प्रस्ताव रखा कि होमरूल लीग (स्वायत्त सभा) का संविधान बदलकर उसके उद्देश्य सत्याग्रह अभियान के अनुसार बना दिये जाएँ तो जिन्ना ने इस प्रस्ताव का भी विरोध किया। 1920 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में गांधी ने प्रस्ताव रखा कि "सभी वैध और शांतिपूर्ण साधनों का सहारा लेकर भारत की जनता के लिए स्वराज्य उपलब्ध किया जाना चाहिए।" जिन्ना ने इस प्रस्ताव का

विरोध किया। उनका तर्क था, "स्वाधीनता के लिए बेहतर तैयारी किए बिना अंग्रेजों से संपर्क सूत्र" तोड़ना खतरनाक है। यह एक हकीकत है कि जिन्ना के अंग्रेजों से संपर्क सूत्र आजीवन बने रहे। इन्हीं संपर्क सूत्रों के बल पर वे आगे चलकर पाकिस्तान का निर्माण करने में सफल रहे। जिन्ना ने 1921 में 'सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसाइटी' में असहयोग आंदोलन का विरोध करते हुए कहा कि "यह आंदोलन हमें गलत रास्ते पर ले जा रहा है।"

जिन्ना 1923 में धीरे-धीरे अपनी मुस्लिम पहचान के प्रति जागरूक होने लगे। 1923 में जिन्ना ने स्वतंत्र मुसलमान उम्मीदवार के रूप में राष्ट्रीय परिषद के लिए चुनाव लड़ा और निर्विरोध निर्वाचित हुए। इसके बाद जिन्ना लगभग प्रत्येक मुद्दे पर स्वयं को मुस्लिमों का प्रवक्ता और मुस्लिमों का स्वयं को नेता मानने लगे।

जिन्ना ने गांधी को कभी भी पूरे देश का नेता नहीं माना। वे इस बात पर जोर देते रहे कि जिस प्रकार मैं (जिन्ना) मुसलमानों का नेता हूँ, उसी प्रकार गांधी सिर्फ हिंदुओं के नेता हैं। मुस्लिम लीग मुस्लिम हितों का प्रतिनिधित्व करती है। उसी प्रकार कांग्रेस हिंदू हितों का प्रतिनिधित्व करती है। 1937 में लखनऊ मुस्लिम लीग के अधिवेशन में जिन्ना ने कहा, "कांग्रेस पूर्णतः हिंदू नीति पर चल रही है।" 1937 में ही गांधी को लिखी अपनी चिट्ठी में जिन्ना ने लिखा, "हम इस स्थिति में पहुँच गए हैं जिसमें आपको यह मानने में संदेह नहीं होना चाहिए कि मुस्लिम लीग हिंदुस्तान के मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था है, जबकि आप खुद कांग्रेस और देश के दूसरे हिंदुओं के प्रतिनिधि हैं। हम सिर्फ इसी आधार पर आगे की ओर बढ़ सकते हैं....." गांधी ने इस स्थिति को स्वीकार नहीं किया, पर इसका जिन्ना पर कोई असर नहीं पड़ा। उलटे जिन्ना ने 1936 में कांग्रेस से यह माँग भी कर दी कि वह अपनी केंद्रीय समिति में किसी मुसलमान को न रखें। जिन्ना गांधी को, कांग्रेस को हिंदूवाद के पुनर्जागरण के उपकरण और भारत में हिंदू राज की स्थापना की तरफ मोड़ने के लिए उत्तरदायी मानते थे। गांधी आजीवन हिंदू मुस्लिम एकता की बात करते रहे, उसके लिए संघर्ष करते रहे, जिन्ना पर इन प्रयासों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जिन्ना अंततः हितों की बात करते रहे।

गांधी ने रचनात्मक कार्य बहुत किए। हरिजन उत्थान, अस्पृश्यता उन्मूलन, महिला उत्थान, सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन के लिए जनजागृति आदि कार्यों को गांधी ने गति दी। जिन्ना की रुचि रचनात्मक कार्यों में नहीं थी, वे पूरी तरह राजनीति के व्यक्ति रहे। गांधी ने स्वराज्य, स्वदेशी, स्वशिक्षा का स्पष्ट विचार दिया, चरखे को स्वावलंबन और स्वाभिमान का प्रतीक बनाया। जिन्ना इस दिशा में सोच ही नहीं सके। उन्होंने पृथक पाकिस्तान का विचार किया और उसके लिए संघर्ष किया।

गांधी और जिन्ना दोनों की प्रकृति अलग थी। गांधी कठिन परिस्थितियों में भी प्रसन्न रहते थे, जबकि जिन्ना खुशी के वातावरण में भी उदास ही रहे। गांधी की हँसी प्रसिद्ध थी, जबकि जिन्ना को लोगों ने हँसते हुए कम देखा। गांधी के जीवन में रिक्तता नहीं थी, जिन्ना का जीवन रिक्तताओं से भरा हुआ था। गांधी का परिवार भरापूरा था, जिन्ना लगभग एकाकी ही रहे।

गांधी में वैचारिक दृढ़ता तो थी पर दंभ नहीं था, जिन्ना में भी वैचारिक दृढ़ता थी, पर उनमें दंभ भी था। जिन्ना ने संवैधानिक संस्थाओं का अपने तर्कपूर्ण विचारों को व्यक्त करने के लिए उपयोग किया। जिन्ना इंपीरियल कौंसिल के सदस्य रहे। गांधी कभी भी किसी व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं बने और न उन्होंने बनने की इच्छा की।

हिंदुस्तान की आजादी के बाद गांधी एक सामान्य नागरिक की तरह रहे। वे हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए कार्य करते रहे। उन्होंने समाज में फैली नफरत को दूर करने के लिए कार्य किया। अपना शेष जीवन पाकिस्तान में व्यतीत करने का इरादा भी व्यक्त किया। दूसरी ओर पाकिस्तान निर्माण के बाद जिन्ना पाकिस्तान के पहले गवर्नर जनरल बने तथा आजीवन गवर्नर जनरल बने रहे।

गांधी की मृत्यु वीरोचित मृत्यु थी। वे बीमार नहीं हुए, उन्हें सिर दर्द तक नहीं हुआ। 30 जनवरी, 1948 को प्रार्थना सभा में जाते हुए उन्हें गोली मारी गई और वे 'हे राम' कहते हुए शांत हो गए। जिस व्यक्ति का पूरा जीवन सार्वजनिक था वह सबके सामने मारा गया। जिन्ना के जीवन के अंतिम दिन बड़ी तन्हाई में निकले। अप्रैल 1948 में जिन्ना बीमार पड़े। कुछ समय बाद उन्हें क्वेटा से 70 कि.मी. दूर 'जियारत' नामक पर्वतीय नगर ले जाया गया। उनके फेफड़ों में बीमारी बैठ गई थी (उन्हें तपेदिक की बीमारी थी)। जिन्ना अपनी बीमारी किसी को बताना नहीं चाहते थे, इसकी उन्होंने हिदायत भी दे रखी थी। नौ अगस्त, 1948 को उन्हें क्वेटा लाया गया तब तक वे हताश हो चुके थे। जिन्ना ने अपने डॉक्टर से कहा, "आप जानते हैं, जब आप पहली बार जियारत आए थे तो मैं जीना चाहता था। पर अब मेरे जीने, न जीने की बात कोई मतलब नहीं रखती।"

जब जिन्ना को 11 सितंबर, 1948 को जहाज द्वारा कराँची लाया गया तब आदेशानुसार उनके आने की खबर गुप्त रखी गई। उन्हें स्ट्रेचर से एंबुलेंस में लिटाया गया। रास्ते में एंबुलेस खराब हो गई। दूसरी एंबुलेंस को आने में एक घंटा लगा। एक घंटे तक उमस भरी गर्मी में न हवा, न सुविधा; वे तनहा पड़े रहे। कहीं से एक गत्ता लाया गया। उससे उनको हवा की गई तथा मक्खियों को भगाया गया। एंबुलेंस से गवर्नर जनरल हाउस ले जाया गया जहाँ रात्रि 10:20 पर उनकी मृत्यु हो गई।

गांधी के विचार शाश्वत हैं। वे आज भी प्रासंगिक हैं, उनके चिंतन का प्रभाव वैश्विक है। विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों में आज भी उनके विचारों, कार्यों और जीवन पर अध्ययन और शोध हो रहे हैं। जिन्ना का अपना कोई चिंतन नहीं, उनकी भूमिका पाकिस्तान के निर्माण तक सीमित रही।

महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा

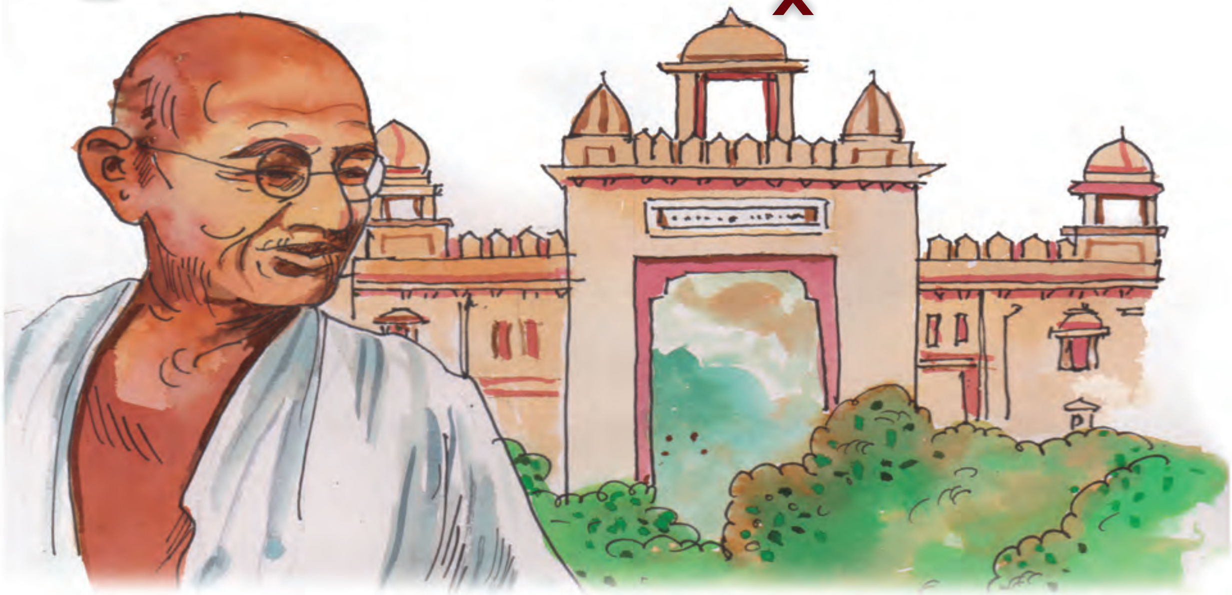

सन्त समीर

जन्म : 10 जुलाई, 1970

शिक्षा : समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर।

लेखन : नब्बे के दशक की प्रतिष्ठित फीचर सर्विस 'स्वदेशी संवाद सेवा' के संस्थापक संपादक रहे। बहुराष्ट्रीय उपनिवेशवाद, वैश्वीकरण, डब्ल्यूटीओ जैसे मुद्दों पर बहस की शुरुआत करने वाली इलाहाबाद से प्रकाशित वैचारिक पत्रिका 'नई आजादी उद्घोष' के संपादक और सलाहकार संपादक रहे। कुछ समय तक क्रॉनिकल समूह के पाक्षिक 'प्रथम प्रवक्ता' से जुड़े रहने के बाद फिलहाल हिंदुस्तान टाइम्स समूह की मासिक पत्रिका 'कादंबिनी' से संबद्ध हैं।

कृतियाँ : 'सफल लेखन के सूत्र' (1996), 'स्वदेशी चिकित्सा' (2001), 'सौंदर्य निखार' (2002), 'स्वतंत्र भारत की हिंदी पत्रकारिता : इलाहाबाद जिला' (शोध प्रबंध, 2007) 'हिंदी की वर्तनी' (2010), पत्रकारिता के युग निर्माता : प्रभाष जोशी (2010)।

संपर्क : मोबाइल : 8010802052

ई-मेल : santsameer@gmail.com

"जापान आज अमेरिका और इंग्लैंड से लोहा ले रहा है। लोग इसके लिए उसकी तारीफ करते हैं। मैं नहीं करता। फिर भी जापान की कुछ बातें सचमुच हमारे लिए अनुकरणीय हैं। जापान के लड़के और लड़कियों ने यूरोपवालों से जो कुछ पाया है, सो अपनी मातृभाषा जापानी के जरिए ही पाया है, अंग्रेजी के जरिए नहीं। जापानी लिपि बहुत कठिन है, फिर भी जापानियों ने रोमन लिपि को कभी नहीं अपनाया।"

आज भी हम समझ सकते हैं कि महात्मा गांधी सन् 1942 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में जब यह बोल रहे थे तो वास्तव में वे क्या कहना चाहते थे। मातृभाषा की अहमियत और एक राष्ट्रीय भाषा व सर्वमान्य लिपि की जरूरत को गांधी ने जिस गहराई और स्पष्टता के साथ उस दौर में महसूस किया था, वह आज के लिए भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। गांधी ने तमाम भारतीय भाषाओं के बीच से एक राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रीय भाषा का चेहरा उभारने की कोशिश करते हुए हिंदी या हिंदुस्तानी की संपर्क-सामर्थ्य की शिनाख्त की थी और इसी में वे आजाद भारत की विकास-गाथा रचना चाहते थे।

सामाजिक जीवन में सक्रिय होने के साथ ही महात्मा गांधी को इस बात का अंदाजा हो गया था कि किसी भी संप्रभु राष्ट्र के लिए संपर्क की एक राष्ट्रीय भाषा भी चाहिए ही। उन्होंने साफ शब्दों में कहा, "बिना राष्ट्रभाषा के कोई भी राष्ट्र गूँगा हो जाता है।" इससे भी एक कदम आगे जाकर उन्होंने यहाँ तक कह दिया कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्रसेवा संभव नहीं। 11 नवंबर, 1917 को बिहार के मुजफ्फरपुर शहर में आयोजित एक सभा में उन्होंने कहा, "मैं कहता आया हूँ कि राष्ट्रीय भाषा एक होनी चाहिए और वह हिंदी होनी चाहिए। हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना राष्ट्रीय कार्य हिंदी भाषा में करें। हमारे बीच हमें अपने कानों में हिंदी के ही शब्द सुनाई दें, अंग्रेजी के नहीं। इतना ही नहीं, हमारी सभाओं में जो वाद-विवाद होता है, वह भी हिंदी में होना चाहिए। ऐसी स्थिति लाने के लिए मैं जीवनभर प्रयत्न करूँगा।" वास्तव में दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही उन्हें यह आभास हो

गया था कि भारत जैसे देश की राष्ट्रभाषा बनने की काबिलियत अगर किसी भाषा में है तो वह हिंदी है। यह देख उन्हें दिलचस्प लगा था कि वहाँ रहने वाले भारतीय, चाहे वे किसी भी हिस्से के हों, हिंदीभाषी हों या गैर-हिंदीभाषी, आपसी व्यवहार में हिंदी का ही इस्तेमाल करते हैं।

महात्मा गांधी हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रति कितने गंभीर थे, इसका अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वे स्वराज्य के आंदोलन में शामिल होने से पहले ही राष्ट्रभाषा के मसले को हल कर लेना चाहते थे। 21 जून, 1918 को इस बाबत उन्होंने गुरुदेव

"हिंदी के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए गांधीजी ने हिंदी को हिंदुस्तानी कहा। असल में वे ऐसी हिंदी चाहते थे जो आमजन के रोजमर्रा के व्यवहार में प्रयोग की जाती हो। ऐसी हिंदी, जिसमें न संस्कृत शब्दों का एकतरफा आधिक्य हो और न ही अरबी-फारसी का। उनकी हिंदी या हिंदुस्तानी में संस्कृत के शब्द थे तो उर्दू के भी। अंग्रेजी या दूसरी अन्य भाषाओं के जो शब्द आम व्यवहार में रच-बस गए हों, उनके भी इस्तेमाल से उन्हें परहेज नहीं था। अलबत्ता, वे किसी भी तरह के जबरदस्ती ठूँस दिए गए शब्दों के विरोधी थे।"

रवींद्रनाथ ठाकुर को एक चिट्ठी लिखी थी। इस चिट्ठी के अनुसार वे इसी वर्ष मार्च माह में इंदौर में होने वाले हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में अपने भाषण के लिए कुछ प्रश्नों पर विचारवान नेताओं के मत एकत्र करना चाहते थे। वे प्रश्न थे—(1) क्या हिंदी अंतःप्रांतीय व्यवहार तथा अन्य राष्ट्रीय कार्रवाई के लिए उपयुक्त एकमात्र संभव राष्ट्रीय भाषा नहीं है? (2) क्या हिंदी कांग्रेस के आगामी अधिवेशन में मुख्यतः उपयोग में लाई जाने वाली भाषा नहीं होनी चाहिए? (3) क्या हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयों में ऊँची शिक्षा देशी भाषाओं के माध्यम से देना वांछनीय और संभव नहीं है? और क्या हमें प्रारंभिक शिक्षा के बाद अपने विद्यालयों में हिंदी को अनिवार्य द्वितीय भाषा नहीं बना देना चाहिए? गांधीजी ने इस चिट्ठी में लिखा था, "मैं महसूस करता हूँ कि यदि हमें जनसाधारण तक पहुँचना है और यदि राष्ट्रीय सेवकों को सारे भारतवर्ष के जन-साधारण से संपर्क करना है, तो उपर्युक्त प्रश्न तुरंत हल किए जाने चाहिए।" दरअसल, गांधी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने कांग्रेस के अंग्रेजी में चले आ रहे कामकाज को राष्ट्रभाषा में किए जाने की पहल की।

हिंदी के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए गांधीजी ने हिंदी को हिंदुस्तानी कहा। असल में वे ऐसी हिंदी चाहते थे जो आमजन के रोजमर्रा के व्यवहार में प्रयोग की जाती हो। ऐसी हिंदी, जिसमें न संस्कृत शब्दों का एकतरफा आधिक्य हो और न ही अरबी-फारसी का। उनकी हिंदी या हिंदुस्तानी में संस्कृत के शब्द थे तो उर्दू के भी। अंग्रेजी या दूसरी अन्य भाषाओं के जो शब्द आम व्यवहार में रच-बस गए हों, उनके भी इस्तेमाल से उन्हें परहेज नहीं था। अलबत्ता, वे किसी भी तरह के जबरदस्ती ठूँस दिए गए शब्दों के विरोधी थे। कई लोग गांधीजी की हिंदुस्तानी को हिंदी से कुछ इतर समझ लेते हैं, लेकिन वास्तव में यह वही हिंदी है, जो आज भी आम बोलचाल में प्रयोग की जा रही है। ध्यान देने पर पता चलेगा कि संस्कृतनिष्ठ हिंदी के समर्थक भी व्यवहार के स्तर पर गांधीजी की हिंदुस्तानी में ही अपना काम चलाते हैं। हिंदी या हिंदुस्तानी की व्याख्या करते हुए गांधीजी ने नौ मई और 18 मई, 1936 के हरिजन में लिखा, "जिस प्रकार कार्नवाल, लंकाशायर और मिडिलसैक्स एक ही भाषा के विभिन्न नाम हैं, उसी प्रकार हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू एक ही भाषा के अलग-अलग नाम हैं। आज एक नई भाषा बनाने का नहीं, बल्कि जिस भाषा को तीनों नामों से जाना जाता है, उसे अंतःप्रांतीय भाषा बनाने का हमारा उद्देश्य है।... इसलिए मैंने हिंदी या हिंदुस्तानी की यह व्याख्या की है। चाहे वह 'देवनागरी या उर्दू' में लिखी जाए।"

27 अगस्त, 1925 के 'यंग इंडिया' में उन्होंने कुछ यूँ लिखा, "अगर हमें एक राष्ट्र होने का अपना दावा सिद्ध करना हो, तो हमारी अनेक बातें एक-सी होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न धर्म और संप्रदायों को एक सूत्र में बाँधने वाली हमारी एक सामान्य संस्कृति है। हमारी त्रुटियाँ और बाधाएँ भी एक-सी हैं। मैं यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि हमारी पोशाक के लिए एक ही तरह का कपड़ा न केवल वांछनीय है, बल्कि आवश्यक भी है। हमें एक सामान्य भाषा की भी जरूरत है, देशी भाषाओं की जगह पर नहीं, परंतु उनके सिवा। इस बात में साधारण सहमति है कि यह माध्यम हिंदुस्तानी ही होना चाहिए, जो हिंदी और उर्दू के मेल से बने और जिसमें न तो संस्कृत की, न फारसी या अरबी की ही भरमार हो।"...तो कुछ ऐसी ही हिंदी को गांधीजी राष्ट्रभाषा के रूप में देखना चाहते थे।

देखा जाए तो हिंदी को उसका हक दिलाने के लिए गांधीजी का योगदान अविस्मरणीय है। भारत आने से पहले ही सन् 1906 में अपनी एक प्रार्थना तक में उन्होंने कहा था, "भारत की जनता को एक रूप होने की शक्ति और उत्कंठा दे। हमें त्याग, भक्ति और नम्रता की मूर्ति बना, जिससे हम भारत देश को ज्यादा समझें, ज्यादा चाहें। ...हिंदी एक ही है। उसका कोई हिस्सा नहीं है। हिंदी के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी मुझे इस दुनिया में प्यारा नहीं है।'' इसके बाद जब गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' लिखा तो उसमें भाषा के विषय में अपना मंतव्य कुछ यों व्यक्त किया, "सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट होनी चाहिए। हिंदू-मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, इसलिए हिंदुस्तानियों को इन दोनों लिपियों को जान लेना जरूरी है। ऐसा होने से हम आपस के व्यवहार में अंग्रेजी को निकाल सकेंगे।"

राष्ट्रभाषा एक और लिपियाँ दो, गांधीजी के भाषा विषयक विचार में यह अजब उलटबाँसी दिखती है, पर सच्चाई यह है कि वे बहुत दूर की सोच रहे थे। उनकी दृष्टि में प्रश्न महज भाषा तक सीमित नहीं था, बल्कि भाषा के जरिए सांप्रदायिक सौहार्द का वातावरण भी वे देश में बनाना चाहते थे। वास्तव में वे चाहते तो यह थे कि सारी ही भारतीय भाषाओं के लिए एक सर्वमान्य लिपि प्रचलित हो जाए, पर सौहार्द कायम रखने के लिए उन्हें देवनागरी के साथ उर्दू की लिपि भी आवश्यक लगी। इस बात को स्पष्ट करते हुए 1947 में उन्होंने कहा, "जब तक उर्दू लिपि का संबंध मुसलमानों से माना जाता है तब तक हमारा फर्ज है कि हम हिंदुस्तानी के नाम पर और दोनों लिपियों पर कायम रहें। यह बात सबको साफ समझ में आने जैसी है।" अंततः गांधीजी की मंशा थी कि धीरे-धीरे पूरा देश एक भाषा और एक लिपि के व्यवहार पर आ जाए। 1948 में उन्होंने कहा, "दो लिपि को रखते हुए जो आखिर में आसान होगी, वही चलेगी। यहाँ बात इतनी ही है कि उर्दू का बहिष्कार न हो। इस बहिष्कार में द्वेष है। इस झगड़े की जड़ में द्वेष था, आज वह बढ़ गया है। ऐसे मौके पर हम, जो एक हिंदुस्तान चाहते हैं, और वह हथियारों की लड़ाई से नहीं, उनका फर्ज होता है कि दोनों लिपि को जगह दें।...एक ही लिपि को सब खुशी से अपनावें तो अच्छा ही है। ऐसा होने के लिए भी दो लिपियों का चलना आज जरूरी है।" यह जानना महत्वपूर्ण है कि उर्दू लिपि को साथ रखने की बात करते हुए भी गांधीजी स्पष्ट रूप से मानते थे कि देवनागरी सर्वश्रेष्ठ लिपि है। अपनी मृत्यु से पाँच दिन पहले ही भाषा के विषय में अपना मंतव्य जाहिर करते हुए उन्होंने कहा था कि नागरी और उर्दू लिपि के बीच अंत में विजय नागरी लिपि की ही होगी।

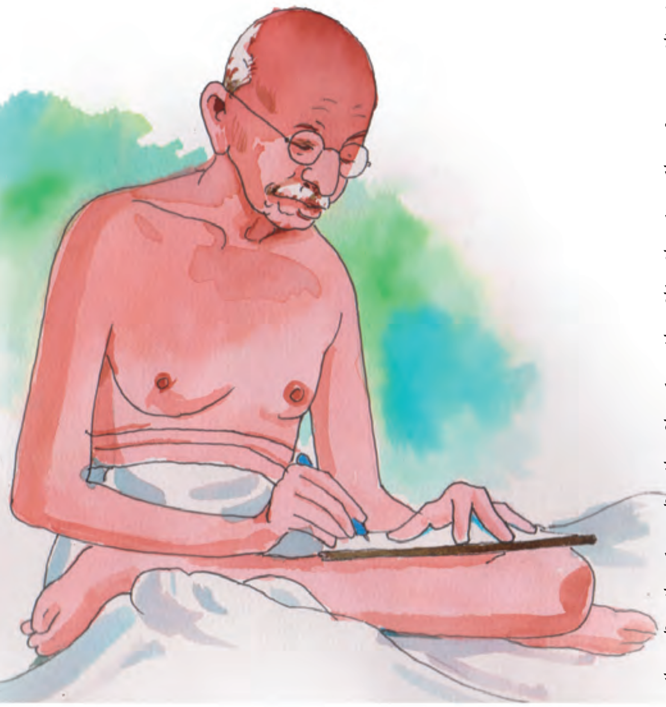

गांधीजी की बात पर हमारे रहनुमाओं और हिंदी के विद्वानों ने ध्यान से सोचा होता तो देश की सभी भाषाओं को उनकी सही जगह मिल गई होती और उनके बीच के आपसी झगड़े फन फैलाए सामने न खड़े होते। एक अदद उर्दू लिपि के प्रति सदाशयता दिखाने का मतलब होता, व्यापक स्तर पर सांप्रदायिक सौहार्द का वातावरण। न उर्दूवालों को हिंदी से नफरत होती और न हिंदीवालों को उर्दू से। दोनों भाषाओं के शब्द भंडार मिलकर हिंदी को अब तक काफी समृद्ध बना चुके होते। देवनागरी की सामर्थ्य से आज पूरा देश परिचित हो चुका होता और समूचा उर्दू अदब इस लिपि में भी अपनी चमक बिखेर रहा होता। यहाँ फिर से याद दिलाने की जरूरत है कि गांधी यदि हिंदी को हिंदुस्तानी के रूप में देख रहे थे तो उसकी सबसे बड़ी वजह यही थी कि हिंदी और उर्दू का व्याकरण एक है। अंतर महज अरबी-फारसी और संस्कृत के शब्दों के इस्तेमाल का है। जिन लोगों के मन में यह भ्रम जड़ जमाए हुए है कि गांधी हिंदी पर अरबी-फारसी की शब्दावली लादने की कोशिश कर रहे थे, उन्हें सन् 1945 में वर्धा में हुए 'हिंदुस्तानी कॉन्फ्रेंस' के उस भाषण को जरूर पढ़ना चाहिए, जिसमें गांधीजी ने कहा था, "कुछ उर्दू बोलने वाले बड़ी-बड़ी बातें करते वक्त जिन लफ्जों का इस्तेमाल करते हैं, उन्हें सुनकर मैं घबरा उठता हूँ, हालाँकि उनके साथ मैं काफी बैठता हूँ।"

गांधीजी मूलतः गुजराती-भाषी थे और अंग्रेजी की जानकारी उनकी आला दर्जे की थी, परंतु राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर वे बिलकुल नहीं चाहते थे कि देश में किसी भी स्तर पर अंग्रेजी में कामकाज चलाया जाए। अंग्रेजी या किसी भी अन्य भाषा को सीखने-सिखाने के वे विरोधी नहीं थे। उनका साफ मानना था कि ज्ञान किसी भी तरफ से आए, स्वागत करना चाहिए और इसके लिए अपने दिमाग के खिड़की-दरवाजे खुले रखने चाहिए। मूल बात यह थी कि देश की एकता का सूत्र उन्हें हिंदी या हिंदुस्तानी में दिखाई दिया तो उन्होंने अपने स्तर पर हर तरह से इसे प्रचारित करने का प्रयत्न किया। कई बार उन्होंने राष्ट्रभाषा के मसले को आंदोलन के अपने दूसरे मसलों से भी ऊपर रखा। उनकी कोशिशों का ही नतीजा था कि जब उन्होंने लोकमान्य तिलक से हिंदी सीखने का निवेदन किया तो तिलक ने हिंदी सीखना शुरू कर दिया। गांधीजी के कहने पर रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी हिंदी सीखने का अभ्यास शुरू किया। गांधीजी की कोशिशों का असर था कि राधिकारमण सिंह, आचार्य शिवपूजन सहाय, फणीश्वरनाथ रेणु, रामवृक्ष बेनीपुरी, नागार्जुन जैसे अनेक रचनाकार अपनी क्षेत्रीय बोलियों के मोह से ऊपर उठे और हिंदी के विकास में बढ़-चढ़कर योगदान देने लगे। जयशंकर प्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी, मुंशी प्रेमचंद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला',

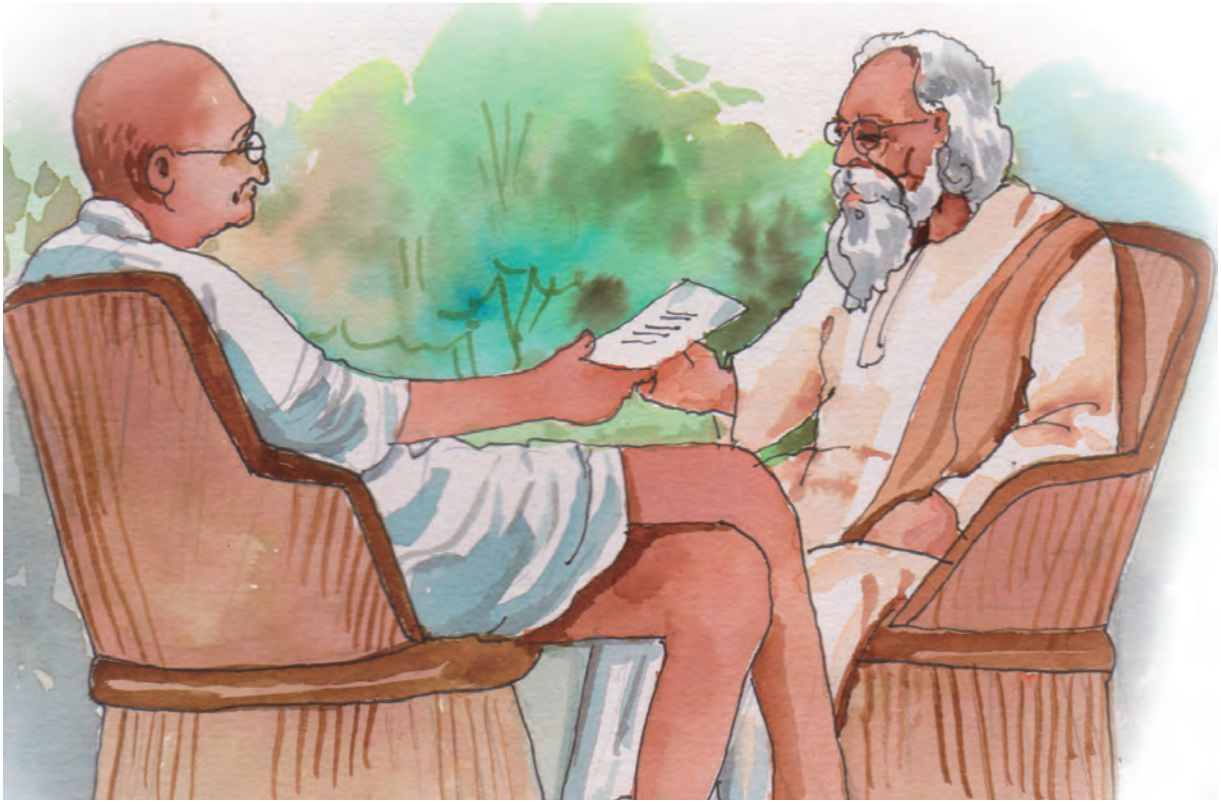

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे तमाम साहित्यकारों ने हिंदी में काम करने को राष्ट्रीय धर्म जैसा माना।

आजादी के आंदोलन में सक्रिय होने के साथ ही राष्ट्रभाषा के लिए गांधीजी की कोशिशों का जो रूप दिखाई देता है, वह अपने आप में एक मिसाल है। उनके काम को सिलसिलेवार देखें, तो राष्ट्रभाषा के प्रति उनका आग्रह कई दूसरी बातों से बहुत ज्यादा है। 1909 में लिखे गए 'हिंद स्वराज' में उन्होंने भाषा पर अपना मूल मंतव्य जाहिर किया, तो 1917 में आयोजित द्वितीय गुजराती शिक्षा परिषद के सभापति के पद से उन्होंने राष्ट्रीय भाषा के पंचसूत्री लक्षण गिनाए और उनकी तार्किक व्याख्या की। 29 मार्च, 1918 को इंदौर में आयोजित आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन में हिंदी की एक तार्किक परिभाषा दी। उन्होंने कहा, "हिंदी भाषा वह भाषा है, जिसको उत्तर में हिंदू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिंदी एकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह एकदम फारसी शब्दों से लदी हुई है। ...भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जन-समूह सहज में समझ ले। 1918 में ही दक्षिण भारतीय जनता से उन्होंने हिंदी सीखने की मार्मिक अपील की। 21 जनवरी, 1920 के 'यंग इंडिया' में हिंदुस्तानी को विचार-विनिमय का राष्ट्रीय माध्यम बनाने की बात की, तो इसी समय 1920 में उन्होंने पहली बार स्पष्ट रूप से हिंदुस्तानी को परिभाषित किया।

जैसे-जैसे आजादी का आंदोलन परवान चढ़ा, वैसे-वैसे गांधीजी का राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम भी घनीभूत होता गया। 1924 में उन्होंने स्वराज की प्राथमिकताओं में भाषा के प्रश्न को विशेष रूप से शामिल किया। 1935 में हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन में उनकी वेदना समझी जा सकती है, जब उन्होंने कहा, "मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें।" दो मई, 1942 को गांधीजी के मार्गदर्शन में 'हिंदुस्तानी प्रचार सभा' की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य था— "हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी नहीं, बल्कि हिंदुस्तानी यानी हिंदी-उर्दू है।" सन् 1946 में उन्होंने स्पष्ट किया कि कैसे हिंदुस्तानी का प्रचार हिंदी को आगे बढ़ाने वाला है। सन् 1947 में आजादी मिलने के कुछ ही दिन बाद उन्होंने इस बात को और स्पष्ट किया।

भारत विभाजन महात्मा गांधी के लिए किसी सदमे से कम नहीं था और एक तरह से उनकी नीतियों की विफलता दिखाई दे रही थी, फिर भी सौहार्द और राष्ट्रीय एकता के लिए अपनी राष्ट्रभाषा की अवधारणा पर वे कायम रहे। इस संदर्भ में 12 अक्तूबर, 1947; नौ नवंबर, 1947 और 11 जनवरी, 1948 के 'हरिजन सेवक' के अंक पढ़े जाने लायक हैं। बहरहाल, गांधीजी ने राष्ट्रभाषा का अपना अभियान आखिरी दम तक अविराम चलाए रखा। मृत्यु से पाँच दिन पूर्व यानी 25 जनवरी, 1948 को राष्ट्रभाषा के सवाल पर उनका वह अंतिम बयान था, जिसमें उन्होंने हिंदी-हिंदुस्तानी की बात करते हुए नागरी को आला दर्जे की लिपि घोषित किया था।

शक्ति की अहिंसक कल्पना

राजीव रंजन गिरि

जन्म : 19 दिसंबर, 1978 भादा (पूर्वी चंपारण), बिहार

शिक्षा : हिंदी साहित्य में एम.ए. एवं एम.फिल., पीएच.डी.।

संप्रति : राजधानी कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) नई दिल्ली में अध्यापन।

कार्य : कुछेक निबंध संस्कृत, उर्दू, उड़िया, अंग्रेजी और जर्मन में अनूदित। वर्तमान संदर्भ के 'स्त्री मुक्ति : यथार्थ और यूटोपिया' विशेषांक का अतिथि संपादन। गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नई दिल्ली के हिंदी-अंग्रेजी जर्नल अनासक्ति दर्शन के 'भूदान विशेषांक' का संपादन। अभिधा व स्त्री काल के संपादन से संबद्ध।

प्रकाशित कृतियाँ : पाठ और प्रसंग, संविधान सभा और भाषा विमर्श, लघु पत्रिका आंदोलन, सामंती जमाने में भक्ति आंदोलन; 1857 : विरासत से जिरह, प्रेमचंद : संपूर्ण बाल साहित्य, गांधीवाद रहे न रहे एवं पुरुषार्थ, त्याग और स्वराज सहित पाँच संपादित पुस्तकें।

संपर्क : मोबाइल : 9868175601

ई-मेल : rajiv.giri19@gmail.com

सन् 1917 का अप्रैल। चंपारण की धरती। सत्य और अहिंसा का एक नया प्रयोग। करने वाले थे मोहनदास करमचंद गांधी। इससे पहले दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ऐसा प्रयोग (सत्याग्रह) कर चुके थे। वहाँ सफलता भी मिल चुकी थी। इस 'प्रयोग' ने इन्हें हिंदुस्तान में खास पहचान दिलाई थी। संभवतः यही कारण था कि चंपारण के एक किसान राजकुमार शुक्ल ने तत्कालीन अन्य नेताओं से चंपारण आकर किसानों के हालात जानने-समझने के लिए आग्रह न कर, गांधीजी से अपनी तकलीफ सुनाई और उन्हें बुलाया। उस दौर के राजनीतिक परिदृश्य पर गौर करने पर दिखता है कि 1917 से पहले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली पंक्ति के नेताओं में गांधीजी नहीं थे। फिर भी देश के एक छोर पर निवास करने वाले, एक किसान के मन में गांधीजी के प्रति इस कदर भरोसा काबिलेगौर है। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में चंपारण पर विस्तारपूर्वक लिखा है। उन्होंने बताया है कि चंपारण में 'अहिंसा देवी का साक्षात्कार' किया। भारत में, महात्मा गांधी की अगुवाई में, पहले सत्याग्रह की प्रयोग स्थली बनी चंपारण की सरजमीं। 1917 के चंपारण सत्याग्रह से भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की प्रकृति में बदलाव आया। इसी के बाद गांधीजी की जगह, स्वाधीनता आंदोलन और कांग्रेस के केंद्र में, बनी।

राजकुमार शुक्ल के निवेदन पर जाते समय गांधीजी ने यह नहीं सोचा था कि जहाँ 'सत्याग्रह' करने जा रहे हैं वहाँ इतने दिन रुकने पड़ेंगे, कि वहाँ शिक्षा को लेकर अपनी अवधारणा को असली रूप देंगे, कि वहाँ कस्तूरबा गांधी, राजेंद्र प्रसाद सरीखे सभी महत्वपूर्ण लोगों को बुलाएँगे या चंपारण के किसानों की असली स्थिति जानने के लिए शुरू की गई जाँच-पड़ताल निकट भविष्य में ही इतना महत्वपूर्ण साबित होगी। या इस चंपारण-यात्रा से 'सत्याग्रह' के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ेगा।

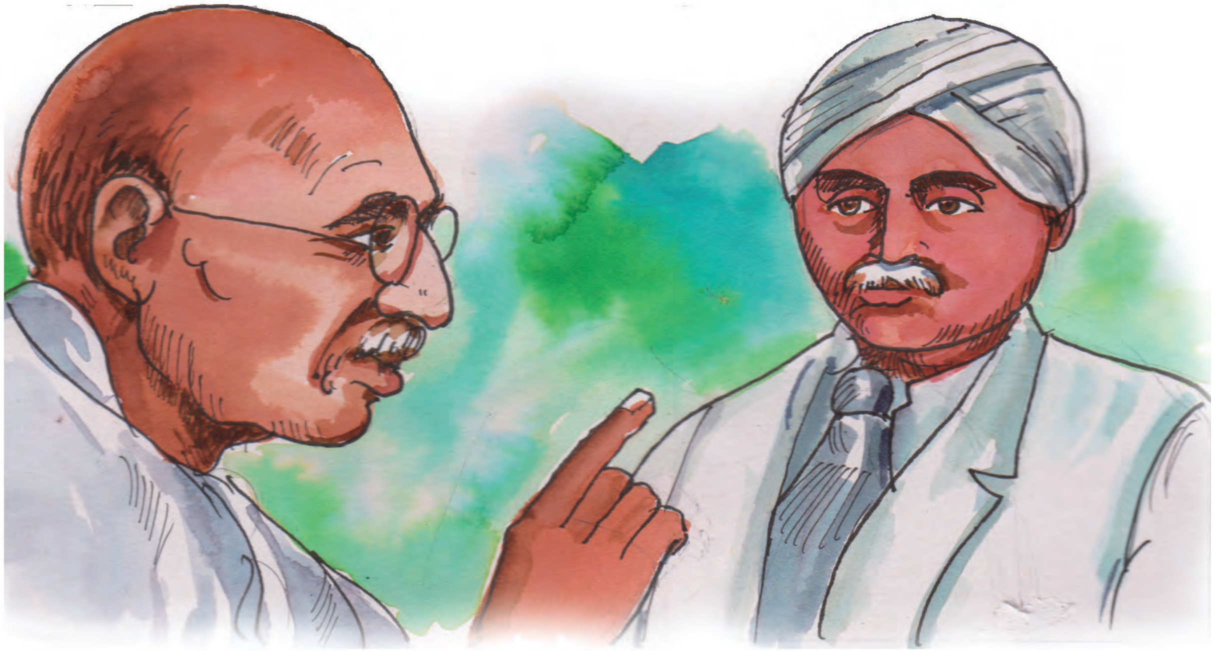

'सत्याग्रह' शब्द की उत्पत्ति के बारे में गांधीजी ने बताया है कि 'सत्याग्रह' शब्द की उत्पत्ति के पहले उस वस्तु की उत्पत्ति हुई। वस्तु का मतलब, उसका, जिसे बाद में ज्ञान की दुनिया में 'सत्याग्रह' के नाम से जाना गया। इसकी उत्पत्ति के समय गांधीजी भी उसके स्वरूप को पहचान नहीं सके थे। सभी लोग उसे गुजराती में 'पैसिव रेजिस्टेंस' के अंग्रेजी नाम से पहचानते थे। दक्षिण अफ्रीका में, गोरों की एक सभा में, गांधीजी ने देखा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' का संकुचित अर्थ किया जाता है। इसे कमजोरों का हथियार माना जाता है। यह भी माना जाता है कि इसमें द्वेष हो सकता है और इसका अंतिम स्वरूप हिंसा में प्रकट हो सकता है। ऐसे में, गांधीजी ने इसकी मुखालफत की।

हर नई या मौलिक परिघटना को संबोधित करने के लिए नए शब्द की जरूरत पड़ती है। एक ऐसा शब्द जो उस परिघटना को, उसके पूरे परिप्रेक्ष्य में जाहिर कर सके। कई बार पुराने शब्दों में परिघटनाएँ नया अर्थ भर देती हैं। तब पुराना अर्थ विस्थापित हो जाता है और नया अर्थ उस शब्द के साथ मजबूती से संबद्ध हो जाता है। दक्षिण अफ्रीका में सत्ता के खिलाफ, जिस रूप में गांधीजी की अगुवाई में संघर्ष हुआ, उसकी अर्थवत्ता को अभिव्यक्त कर पाने में 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्द सक्षम नहीं था। इसलिए 'हिंदुस्तानियों के लिए अपनी लड़ाई का सच्चा परिचय देने के लिए नए शब्द की योजना करना आवश्यक हो गया।' गांधीजी को इसके लिए वाजिब एवं स्वतंत्र शब्द नहीं सूझ रहा था। लिहाजा इन्होंने नाम मात्र का इनाम रखकर 'इंडियन ओपिनियन' के पाठकों में प्रतियोगिता करवाई। इनाम मिला, मगनलाल गांधी को। इन्होंने सत+आग्रह की संधि करके 'सदाग्रह' शब्द बनाकर भेजा। गांधीजी ने 'सदाग्रह' शब्द को और अधिक स्पष्ट करने के विचार से बीच में 'य' अक्षर बढ़ाकर 'सत्याग्रह' शब्द बनाया। नतीजतन गुजराती में यह लड़ाई, इस नाम से पहचानी जाने लगी। कालांतार में आलम यह कि दुनियाभर में अहिंसक संघर्ष का पर्याय यह शब्द बन गया।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के दिनों से ही जाहिर हो गया था कि मोहनदास करमचंद गांधी के चिंतन और कर्म की बुनियाद सत्य और अहिंसा है। अहिंसा को गांधीजी सत्याग्रह की सबसे बड़ी कसौटी मानते थे। लिहाजा, इस पर वाद-विवाद-संवाद होने लगे। अहिंसा को सबसे बड़ा मूल्य स्थापित करने पर अनेक लोग तब भी सहमत नहीं थे, आज भी नहीं हैं। अहिंसा को बुनियादी कसौटी मानने से इनकार बिलकुल दो वैचारिक ध्रुवों पर खड़े, परस्पर विरोधी लोग भी करते हैं। धुर दक्षिणपंथी और धुर वामपंथी लोग, जो अन्य मसले पर एक-दूसरे से असहमत होते हैं, इस मुद्दे पर एकमत रखते हैं। बहरहाल, महान स्वतंत्रता सेनानी लाला लाजपत राय भी गांधीजी के इस मत से पूरी तरह असहमत थे। लाला लाजपत राय और महात्मा गांधी के बीच अहिंसा को लेकर हुआ असहमत संवाद उल्लेखनीय है। कोलकाता से प्रकाशित 'मॉडर्न रिव्यू' के जुलाई 1916 अंक में लाला लाजपत राय ने अहिंसा पर सवाल खड़ा करते हुए 'अहिंसा परमो धर्मः —एक सत्य या सनक?' शीर्षक लेख लिखा। इसमें लालाजी ने लिखा कि "मेरे मन में श्री गांधी के व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सम्मान का भाव है। मैं जिन लोगों की पूजा करता हूँ, उनमें वे भी आते हैं। मुझे उनकी सच्चाई में कोई संदेह नहीं है। मैं उनके हेतुओं पर भी शंका नहीं करता। किंतु उन्होंने जो अनिष्टकारी मत स्थिर किया है, उसका तीव्र विरोध करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। इस संबंध में गांधी जैसे व्यक्ति को भी भारत के नवयुवकों के मस्तिष्क विषाक्त करने की छूट नहीं दी जानी

चाहिए। जातीय शक्ति के स्रोतों को अपवित्र करने की स्वतंत्रता किसी को नहीं होनी चाहिए।"

लाला लाजपत राय ने अहिंसा को, ठीक से नहीं समझने पर, एक वहम का रूप कहा, जिससे व्यक्ति कायर, कापुरुष, हीन, मूढ़ बन जाता है। इसका अनुचित उपयोग ऐसी सड़ाँध है जिसका विष समस्त शरीर में फैल जाता है। यह सड़ाँध मनुष्य की शक्तियों को क्षीण कर देती है और स्त्री-पुरुषों को ऐसे अर्द्ध-विक्षिप्त, उन्मादी और दुर्बल प्राणियों में परिवर्तित कर देती है। इनके मुताबिक पिछले पंद्रह सौ वर्षों से भारत के पद-दलित होने, मानवीय गुणों से रहित होने का एक बड़ा कारण अहिंसा है। अहिंसा को पवित्रता की सर्वोच्च कसौटी मानने से ही भारत में साहस, वीरता, शौर्य आदि गुण निकृष्ट हो गए। पवित्रता और आत्मसम्मान का महत्व कम हो गया। देशभक्ति, देशप्रेम, कुटुंबप्रेम और जातीय सम्मान सब समाप्त हो गए। अहिंसा का ऐसा विकृत या अनुचित उपयोग करने से या अन्य प्रत्येक वस्तु की उपेक्षा करके उसे अति महत्व देने से ही हिंदुओं का सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक अधःपतन हुआ।

"महात्मा गांधी ने बिलकुल ठीक कहा है कि 'इस विश्वास का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है कि हमारे पुरुषोचित गुण अहिंसा के अति आचार के कारण समाप्त हो गए। पिछले पंद्रह सौ वर्षों में एक राष्ट्र की तरह हमने अपनी शारीरिक वीरता के पर्याप्त प्रमाण दिए हैं? किंतु भीतरी मतभेदों ने हमें एक-दूसरे से दूर रखा और देश प्रेम की जगह हमारा स्वार्थ अधिक प्रबल रहा।'"

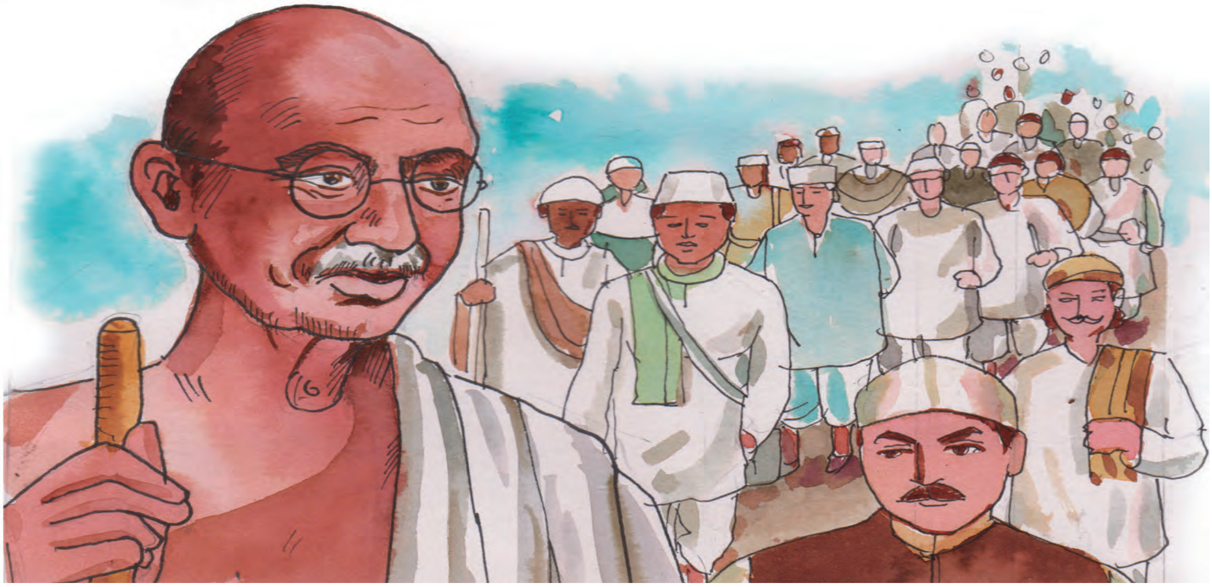

इन बातों का गांधीजी द्वारा दिया गया जवाब 'मॉडर्न रिव्यू' के अक्तूबर 1916 अंक में छपा। उन्होंने लिखा कि लालाजी के प्रति समादर रखते हुए भी मुझे पहले तो उनकी इस बात का खंडन करना चाहिए कि अहिंसा के सिद्धांत की अति के कारण ही भारत का अधःपतन हुआ। महात्मा गांधी ने बिलकुल ठीक कहा है कि 'इस विश्वास का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है कि हमारे पुरुषोचित गुण अहिंसा के अति आचार के कारण समाप्त हो गए। पिछले पंद्रह सौ वर्षों में एक राष्ट्र की तरह हमने अपनी शारीरिक वीरता के पर्याप्त प्रमाण दिए हैं? किंतु भीतरी मतभेदों ने हमें एक-दूसरे से दूर रखा और देशप्रेम की जगह हमारा स्वार्थ अधिक प्रबल रहा।' गांधीजी ने अहिंसा में सच्चाई और निर्भयता को अनिवार्य बताया। इन्होंने कहा है कि अहिंसा के पालन के लिए साहस की पराकाष्ठा की अपेक्षा है। लिहाजा, अहिंसा को कायरों का हथियार मानना गलत है।

1936 में महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की एक कविता छपी—'राम की शक्तिपूजा'। इस कविता में निराला ने लिखा है कि शक्ति अन्याय की तरफ है। इसलिए 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना।' कहना न होगा कि अन्याय की तरफ हिंसा की शक्ति होती है। लिहाजा कवि ने इसके प्रतिपक्ष में शक्ति की मौलिक कल्पना करने का इसरार किया था। असल में शक्ति को हिंसा के पर्याय के तौर पर समझने की रवायत रही है। निराला जिसे मौलिक कल्पना करने को कह रहे हैं, वह अहिंसा की ताकत ही है। ऐसा लगता है कि दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने अहिंसक शक्ति की कल्पना कर 'सत्याग्रह' के हथियार से संघर्ष किया था, निराला ने उसे ही वाणी दी है।

शक्ति की मौलिक कल्पना कर अहिंसा को मजबूती, ताकत, साहस, निर्भयता का पर्याय साबित कर महात्मा गांधी ने मौजूद सभ्यता का विकल्प प्रस्तावित किया था।

बहुरूप गांधी

• अनु बंद्योपाध्याय

महात्मा गांधी को ज्यादातर लोग बस इसलिए जानते हैं कि उन्होंने आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया था, वे वकील थे, चरखा चलाते थे और धोती पहनते थे। उनकी हत्या हो गई थी, और उन्हें राष्ट्रपिता कहा जाता है। वास्तव में गांधीजी का परिचय इतना भर नहीं है।

वे अपने निजी जीवन में दर्जी, नाई, भंगी, मोची, दाई, रसोइया, धोबी, शिक्षक जैसी तमाम भूमिकाओं में भी काम करते रहे हैं। उनके इन कामों के बारे में जानने से न केवल उनके चरित्र के विभिन्न आयाम खुलते हैं, वरन् बहुत कुछ सोचने और सीखने को भी मिलता है।

यह किताब खासकर किशोरों के लिए लिखी है। अनु बंद्योपाध्याय ने यह किताब बंगला में लिखी थी। इसका हिंदी अनुवाद जो शोभा भागवत ने किया है, 1964 में प्रकाशित हुई है। इसे एन.सी.ई.आर.टी. ने छापा है।

दाई

एक बार देश के कई प्रसिद्ध नेता गांधी से जरूरी बात करने सेवाग्राम पहुँचे। उन्होंने देखा कि गांधी बुखार में पड़े दो रोगियों के माथे पर पानी की पट्टी रखने तथा कटिस्नान कराने में लगे हुए थे। थोड़ी देर बाद एक नेता ने चिढ़कर कहा कि यदि आपको समय न हो तो हम लोग जाएँ। गांधी ने शांत भाव से कहा, “ये लोग बड़े कष्ट में हैं, इनको सेवा की बहुत जरूरत है।” इस पर दूसरे सज्जन ने कहा कि ये सब काम क्या आपको खुद ही करना चाहिए? गांधी ने उत्तर दिया, “और कौन करेगा भला? आप गाँव में जाएँ तो देखेंगे कि हर घर में कोई-न-कोई व्यक्ति बुखार में पड़ा हुआ है।”

बचपन से ही गांधी के मन में सेवा करने का बड़ा शौक था। पाठशाला बंद होते ही वह खेल-कूद में न लगकर जल्दी-से-जल्दी घर लौट आते और अपने रुग्ण पिता की सेवा में लग जाते थे। आयुर्वेदिक औषधि बनाकर उन्हें पिलाते, उनके जख्म धोते और काफी रात तक जागकर उनके पैर दबाते। उम्र के साथ-साथ गांधी का सेवा करने का शौक भी बढ़ता गया। दक्षिण अफ्रीका में एक दातव्य चिकित्सालय में जाकर वह प्रतिदिन दो घंटे रोगियों की सुश्रुषा करते थे। वहाँ उन्होंने नुस्खे के अनुसार दवा बनाना सीखा और इससे उन्हें किस रोग में कौन-सी दवा दी जाती है, इसका भी ज्ञान हुआ। वहाँ बहुत-से दुखी भारतीय मजदूर इलाज के लिए आते थे। इस काम के लिए समय निकालने के लिए गांधी को अपना कुछ वकालती काम अपने एक साथी मुसलमान वकील को सौंप देना पड़ा।

दक्षिण अफ्रीका में तीन साल रहकर सन् 1896 में गांधी थोड़े अरसे के लिए अपने परिवार को लेने भारत आए। उस समय

गांधी के पास बहुत काम था। वह दक्षिण अफ्रीकावासी भारतीयों की दुर्दशा बताने के लिए देश के प्रसिद्ध नेताओं और पत्रकारों से मिल रहे थे। इस विषय पर उन्होंने एक 'हरी पुस्तिका' प्रकाशित की थी और उसे बाँटने में व्यस्त थे। लेकिन जैसे ही उन्हें मालूम हुआ कि उनके बहनोई बहुत बीमार हैं और उनकी बहन के पास इतने पैसे नहीं कि वह कोई दाई या आया रख सकें, वे मरीज को अपने घर पर ले आए। उसे अपने कमरे में रखा और रात-दिन उसकी सेवा की।

दक्षिण अफ्रीका के बोअर युद्ध और जुलू विद्रोह के समय गांधी को बड़े पैमाने पर पीड़ितों की सेवा करने का विशेष अवसर मिला था। दोनों अवसरों पर उन्होंने भारतीय स्वयंसेवक दल बनाकर युद्ध में घायलों की बड़ी सेवा की। गांधी इस दल के नायक थे और स्वयंसेवकों के साथ खुद वह पीड़ितों को डोली में डालकर मीलों दूर पहुँचाते थे। वे गोरे सैनिकों के लिए डॉक्टरी नुस्खों के अनुसार दवाई तैयार करते थे। लोगों की सेवा का मौका पाकर उन्हें बहुत संतोष हुआ था। गोरे शासक जुलू लोगों से अधिक कर वसूल करना चाहते थे। जुलू विद्रोहियों पर खूब जुल्म किया गया और बहुतों को कोड़ों से मार कर अधमरा कर दिया गया। गोरी नर्सें तो उन्हें छूना भी पाप समझती थीं। सेवा-सुश्रुषा और दवा के अभाव में उनके घाव पक कर सड़ने लगे। गांधी ने अपने दल के लोगों की सहायता से जुलू विद्रोहियों की मरहम-पट्टी तथा परिचर्या की। गांधी की सेवा की तारीफ करते हुए सरकार ने उन्हें 'जुलू-युद्ध पदक' और 'केसरी हिंद स्वर्ण पदक' दिए।

सौ कामों में बँधे रहने पर भी वह प्रतिदिन आश्रम में रोगियों की खोज-खबर लेना नहीं भूलते थे। सभी रोगियों का पथ्य उनके कहे अनुसार तैयार किया जाता था और कभी-कभी तो उन्हें दिखाकर ही रोगियों को वह पथ्य दिया जाता था। गांधी से मिलने वालों की बैठक जब समाप्त हो जाती तो उनकी कुटिया कभी-कभी रोगियों की भोजनशाला बन जाती थी। चलने-फिरने में समर्थ सभी रोगी उनकी कुटिया में इकट्ठे होकर उन्हीं के सामने खाते थे। किसी रोग की छूत लग जाने का भय गांधी को नहीं था। एक बार एक कोढ़ी भिखारी उनके पास आया। उन्होंने उसे अपनी ही घर में आश्रय दिया और कई दिनों तक उसके घाव धोकर मरहम-पट्टी करते रहे। बाद में गांधी ने उसे अस्पताल में भर्ती कराने का इंतजाम कर दिया। जेल के अपने एक साथी के शरीर पर कोढ़ के लक्षण दिखाई देने पर गांधी जेल के अधिकारियों की अनुमति लेकर रोज उन्हें देखते थे। बाद में वह साथी बहुत बरसों तक सेवाग्राम आश्रम में रहे और गांधी ने बहुत दिनों तक उनके घाव धोकर उसकी मरहम-पट्टी की।

एक बार दक्षिण अफ्रीका में अचानक प्लेग की महामारी फूट पड़ी। वहाँ की सोने की खानों में बहुत-से भारतीय मजदूर काम करते थे। उनकी बस्ती बहुत घनी और गंदी थी। यह महामारी वहाँ भी फैल गई है, यह सुनते ही गांधी फौरन अपने चार साथियों को लेकर वहाँ जा पहुँचे। आस-पास कोई अस्पताल न होने के कारण उन्होंने एक गोदाम का दरवाजा तोड़ डाला और उसे साफ कर एक काम-चलाऊ अस्पताल बना लिया। नगरपालिका के अधिकारियों ने उन्हें कुछ

दवाएँ और कीटाणुनाशक घोल दिया और एक नर्स को वहाँ भेज दिया। नर्स प्लेग से बचने के लिए ब्रांडी का सेवन करती थी। लेकिन गांधी की इसमें तनिक भी आस्था नहीं थी। अस्पताल में 23 लोग भर्ती हुए थे। गांधी रोगियों को दवा देते, उनका बिस्तर साफ करते और रात में उनके पास बैठ कर उनसे बातचीत करते व हिम्मत बँधाते। डॉक्टर की अनुमति लेकर गांधी ने उनमें से तीन रोगियों पर मिट्टी की चिकित्सा आजमाई। इनमें से दो तो अच्छे हो गए मगर उस

"गांधी एनीमा देने, कटिस्नान कराने, शरीर पोंछने, तेल-मालिश करने, मिट्टी की पट्टी देने और भीगी चादर लपेटने में बहुत कुशल थे। अपने रक्तचाप को कम करने के लिए वह अपने माथे पर प्रायः मिट्टी की पट्टी रखा करते थे और उसी अवस्था में सम्माननीय अतिथियों से बातचीत करते रहते थे। उन्होंने जापानी कवि नोगुची से कहा था—"भारत की मिट्टी से मैं जन्मा हूँ, इसलिए भारत की मिट्टी को मैं मुकुट के रूप में अपने सिर पर धारण करता हूँ।""

नर्स समेत सभी बाकी रोगी मर गए। गांधी खुद भी खूब सावधान रहते थे और परिश्रम के समय भरपेट खाना नहीं खाते थे। दूसरों की सेवा करने के साथ-साथ अपने शरीर का ध्यान रखना वह दाई का कर्तव्य मानते थे।

गांधी एनीमा देने, कटिस्नान कराने, शरीर पोंछने, तेल-मालिश करने, मिट्टी की पट्टी देने और भीगी चादर लपेटने में बहुत कुशल थे। अपने रक्तचाप को कम करने के लिए वह अपने माथे पर प्रायः मिट्टी की पट्टी रखा करते थे और उसी अवस्था में सम्माननीय अतिथियों से बातचीत करते रहते थे। उन्होंने जापानी कवि नोगुची से कहा था—"भारत की मिट्टी से मैं जन्मा हूँ, इसलिए भारत की मिट्टी को मैं मुकुट के रूप में अपने सिर पर धारण करता हूँ।"

रोगी की हालत बिगड़ने पर गांधी घबराते नहीं थे, बल्कि धीरज से उपचार करते थे। वह अपने प्रिय-जनों और स्त्री-पुत्र आदि की चिकित्सा-परिचर्या भी बिना घबराए करते थे। एक बार उनके आठ साल के पुत्र की हड्डी टूट गई। गांधी ने एक डॉक्टर द्वारा बाँधी गई पट्टी को खोलकर बच्चे के हाथ में जख्म को साफ किया और मिट्टी की पट्टी बाँधते रहे जिससे हाथ ठीक हो गया। एक बार उनके दस साल के लड़के को टाइफाइड हो गया। चालीस दिन तक उन्होंने यत्न से उसकी परिचर्या की थी। गांधी उसके रोने-चिल्लाने पर ध्यान न देते और उसके शरीर पर गीली चादर लपेट कर उसे कंबल से ढँकते थे। इस प्रकार उन्होंने उसे धीरे-धीरे ठीक कर लिया। वह रोगी की बहुत प्रेम से सेवा करते थे, किंतु इलाज या सुश्रुषा में किसी प्रकार की ढिलाई नहीं आने देते थे। टाइफाइड के एक अन्य रोगी बालक की उन्होंने मिट्टी और जल से चिकित्सा की थी। डेढ़-डेढ़ घंटे बाद वह उसके पेडू पर एक इंच मोटी मिट्टी की पट्टी रखते थे। बुखार उतर जाने पर उन्होंने बालक को खूब पके हुए केलों पर रखा। उन केलों का वे स्वयं अच्छी तरह भुर्ता बनाते थे। उसे ज्यादा न खिला दे, इस डर से उन्होंने यह काम उसकी माँ को भी नहीं सौंपा था। गांधी जानते थे कि रोगी को मानसिक शांति या प्रसन्नता का उसके स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इसलिए वह बातों से रोगी को बहलाए रखते थे। गांधी इतने जतन से तीमारदारी करते थे कि रोगी उन्हें देखकर प्रसन्न हो उठते थे। यों तो गांधी किसी भी नशे को अच्छा नहीं समझते थे किंतु एक बार आश्रम में एक मद्रासी बालक को पेचिश हो गई और उसकी कॉफी पीने की इच्छा हुई। ज्योंही गांधी को इसका पता चला तो उसकी तबीयत जरा संभलते ही उन्होंने अपने हाथ से कॉफी बनाई और प्याले में भर कर खुद उसे दी।

दक्षिण अफ्रीका में कस्तूरबा को दो बार बीमारी झेलनी पड़ी थी। डॉक्टरों ने उनके बचने की आशा छोड़ दी थी। किंतु गांधी ने धीरज, सतर्कता और हिम्मत से उनकी परिचर्या करके उन्हें चंगा कर दिया। पहली बार जेल से छूटने पर वो बहुत दुर्बल हो गई थीं। गांधी कस्तूरबा के दाँत साफ करते, कॉफी बनाकर पिलाते, एनीमा देते और उनके पाखाने के बर्तन को साफ किया करते थे। एक बार उन्होंने कस्तूरबा के बाल काढ़ने की कोशिश भी की थी। सवेरा होते ही उन्हें बाँहों का सहारा देकर कमरे के बाहर खुली जगह में एक पेड़ की छाया में सुला देते और सारे दिन छाया के साथ-साथ उनका बिछौना भी सरकाते रहते थे।

दक्षिण अफ्रीका में कुशल हिंदुस्तानी धाएँ नहीं थीं और गोरी दाइयाँ काली औरतों का बच्चा जनाने से इनकार कर सकती थीं। इसलिए जब कस्तूरबा गर्भवती थीं तब गांधी ने प्रसूति का काम सीखा और स्वयं अपनी पत्नी की प्रसूति कराई।

आगा खाँ महल में कस्तूरबा की अंतिम बीमारी के समय भी बहुत सेवा-सुश्रूषा की और उनको कटिस्नान दिया। उस समय गांधी 75 वर्ष के थे।

रसोइया

महादेव देसाई ने एक बार गांधी से पूछा—"बापूजी, फीनिक्स आश्रम स्थापित करने से पहले क्या आपके पास कोई रसोइया था?" गांधी ने जवाब दिया—"नहीं, मैंने बहुत पहले ही उसे छुड़ा दिया था। हमारे पास एक बड़ा अच्छा रसोइया था, लेकिन उसने कहा कि मैं बिना मिर्च-मसाले के भोजन नहीं पका सकता। मैंने उसे तुरंत छुट्टी दे दी और फिर दुबारा कभी रसोइया नहीं रखा।" यह उस समय की बात है जब गांधी 35 वर्ष के थे।

गांधी ने 18 वर्ष की उम्र में पहली बार अपना भोजन बनाने की कोशिश की, तब वह इंग्लैंड में पढ़ते थे। वह कट्टर शाकाहारी थे। वहाँ उन्हें सामान्यतः डबलरोटी, मक्खन और मुरब्बा तथा बिना तली हुई उबली सब्जियाँ मिलती थीं। गांधी अपनी माँ के हाथ के बने स्वादिष्ट मसालेदार भोजन के आदी थे, इसलिए उन्हें ऐसा खाना बिलकुल फीका-फीका लगता था।

शाकाहारी होटलों में कुछ महीने भोजन करने के बाद गांधी ने मितव्ययिता से रहने का निश्चय किया। उन्होंने एक कमरा किराए पर ले लिया और वहाँ स्टोव्ह पर अपना नाश्ता और रात का भोजन स्वयं बनाने लगे। खाना पकाने में उन्हें मुश्किल से बीस मिनट लगते थे और उस पर सिर्फ बारह आने खर्चा बैठता था।

सदस्यों को मनपसंद खाना देने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने सबके लिए एक सीधी-सादी भोजन सूची बना दी थी। सभी का भोजन एक ही रसोई में पकता था।

उन्होंने पाक-कला को, जो कि एक अत्यंत जटिल और कठिन कला है, बिलकुल सरल बना दिया था। उनके आश्रम में भोजन में बिना माँड़ निकाला चावल, रोटी, कच्चा सलाद, उबली और बिना मसाले की सब्जियाँ, फल और दूध या दही दिया जाता था। मिठाई की जगह ताजा गुड़ और शहद दिया जाता था।

जस्ट की पुस्तक 'रिटर्न टु नेचर' पढ़ने के बाद गांधी की यह दृढ़ धारणा बन गई कि मनुष्य को सिर्फ स्वाद के लिए नहीं, बल्कि शरीर को स्वस्थ और पुष्ट रखने के लिए भोजन करना चाहिए। गांधी ने

कुछ समय बाद गांधी ने साल्ट की लिखी पुस्तक 'प्ली फॉर वेजिटेरियनिज्म' पढ़ी और वे लंदन शाकाहारी सभा के संपर्क में आए, तब उन्होंने अपने भोजन में कई परिवर्तन किए।

बैरिस्टरी पास करके भारत लौटने पर गांधी ने बंबई में एक छोटा-सा मकान किराए पर लिया और एक ब्राह्मण रसोइया रखा। गांधी आधा खाना खुद ही पकाते थे, और उन्होंने रसोइए को कुछ विलायती शाकाहारी भोजन बनाना भी सिखाया। गांधी को घर में सफाई व तरतीब का कुछ ज्यादा ही ध्यान रहता था, खासतौर पर रसोईघर की सफाई का, और उन्होंने अपने रसोइए को साफ रहने, अपने कपड़े धोने और नियमित रूप से नहाने की शिक्षा दी।

दक्षिण अफ्रीका या भारत में गांधी के आश्रम में रसोइए नौकर नहीं रखे जाते थे। गांधी मानते थे कि भोजन के लिए कई प्रकार की चीजें पकाना समय और शक्ति की बर्बादी है। वह अपने आश्रम के

आहार-संबंधी नए-नए प्रयोग किए और यह शौक उनको जीवनभर बना रहा। कभी वे बिना पकाया भोजन करने का प्रयोग करते तो कभी किसी और प्रकार का। कुछ प्रयोगों के कारण तो उन्हें तकलीफ भी उठानी पड़ी। पाँच वर्ष तक वे फलाहार पर रहे। एक बार उन्होंने चार माह तक अंकुरित अनाज और कच्ची चीजें खाईं, जिससे उन्हें पेचिश हो गई।

दक्षिण अफ्रीका में फीनिक्स आश्रम में गांधी आश्रम-पाठशाला के प्रधानाध्यापक और आश्रम के मुख्य रसोइया भी थे। वहाँ के प्रवासी भारतीयों ने एक बार यूरोपीयों को भोज दिया। इस अवसर पर गांधी ने भोजन तैयार करने और परोसने में हाथ बँटाया।

फीनिक्स आश्रम से सत्याग्रहियों का पहला जत्था जब सत्याग्रह करने को तैयार हुआ तब गांधी ने उनको अपने हाथों से भोजन बनाकर खिलाया। उन्होंने ढेर-सारी रोटियाँ, टमाटर की चटनी, चावल

और कढ़ी बनाई और खजूर की खीर भी बनाई। एक ओर वह अपने हाथों से खाना बनाते जाते थे और जेल-जीवन के बारे में बताते जाते थे। जब सत्याग्रहियों की संख्या बढ़कर दो हजार पहुँच गई तब गांधी सत्याग्रहियों का जत्था लेकर स्वयं सत्याग्रह के लिए निकले। इन सत्याग्रहियों के लिए राह में खाना बनाने का काम भी वही करते थे। एक दिन दाल पतली हो गई, दूसरे दिन चावल अधपके रह गए। लेकिन उनके साथियों के मन में अपने गांधी भाई के लिए इतना प्रेम और आदर था कि जैसा भी मिला, वैसा खाना बिना शिकायत किए खा गए। दक्षिण अफ्रीका की जेल में भी गांधी भोजन बनाने में अपने साथियों की मदद किया करते थे।

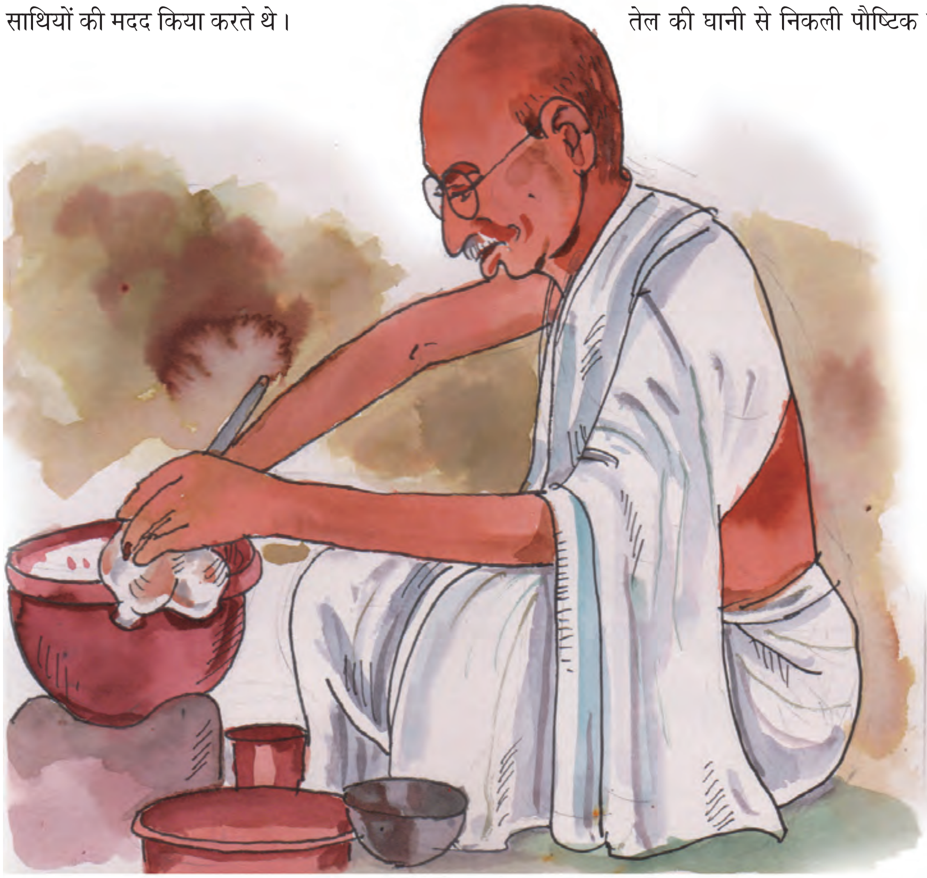

गांधी पाक-कला को शिक्षा का आवश्यक अंग मानते थे और इस बात को गर्व से कहा करते थे कि टाल्स्टाय बाड़ी पर लगभग सभी लड़के भोजन बनाना जानते थे। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के कुछ समय बाद ही जब वह शांति-निकेतन गए तो वहाँ के छात्रों में भी उन्होंने भोजन पकाने का शौक पैदा कर दिया। छात्रों ने सामूहिक रसोई चलाने और बारी-बारी से भोजन बनाने के विचार को खूब पसंद किया। रवींद्रनाथ ठाकुर को संदेह तो था कि क्या यह योजना चल सकेगी? पर उन्होंने इसकी सफलता के लिए अपना आशीर्वाद दिया।

मद्रास में एक छात्रावास में गांधी को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि वहाँ न केवल विभिन्न जातियों और वर्गों के लड़कों के लिए अलग-अलग रसोईघर थे, बल्कि भिन्न-भिन्न रुचि को संतुष्ट करने के लिए तरह-तरह के व्यंजन बनाए जाते थे। एक बार एक बंगाली सज्जन के यहाँ, उनके सामने भाँति-भाँति के व्यंजन परोसे गए। इससे उन्हें बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने निश्चय किया कि आगे से मैं प्रतिदिन भोजन में पाँच चीजों से अधिक नहीं लूँगा। बिहार में उन्होंने युगों से चली आ रही छुआछूत की बुराई को भी खत्म किया और चंपारन में नील की खेती की जाँच में अपनी मदद करने वाले सभी वकीलों को उन्होंने एक ही रसोई में बना भोजन करने के लिए राजी कर लिया।

गांधी की आहार-सूची में कुछ बड़ी विचित्र चीजें होती थीं। नीम की पत्ती से बनी कुनैन जैसी कड़वी चटनी, आश्रम के बगल में लगी तेल की घानी से निकली पौष्टिक खली और दही का मिश्रण, उबले हुए सोयाबीन का भुर्ता, किसी भी हरे और ताजे साग का सलाद, रोटी को कूट कर उससे बनाई गई खीर, मोटे पिसे हुए गेहूँ का दलिया, और भुने हुए गेहूँ, चूरे से तैयार की गई कॉफी, गांधी के आश्रम में परोसी जाने वाली विचित्र चीजें थीं।

गांधी चावल, दाल, रसेदार सब्जी, सलाद, संतरे और संतरे के छिलके का मुरब्बा, केक, बिना खमीर या बेकिंग पाउडर की डबल रोटी, अच्छी चपाती और खाखरा बना सकते थे। सेवाग्राम में एक विशेष प्रकार का चूल्हा प्रयोग किया जाता था, जिसमें बहुत कम खर्च से सैकड़ों आदमियों के लिए चावल और रोटियाँ तैयार हो सकती थीं और सब्जी उबाली जा सकती थी।

एक बार उनके एक साथी ने कहा, "अभी हाल में एक खबर थी कि घास में बहुत विटामिन होते हैं। जिस समय यह खोज हुई उस समय गांधी आश्रम में नहीं थे, वरना निश्चय ही वह रसोई बंद करा देते और हमसे कहते कि आप लोग आश्रम के बगीचे की घास खाएँ।"

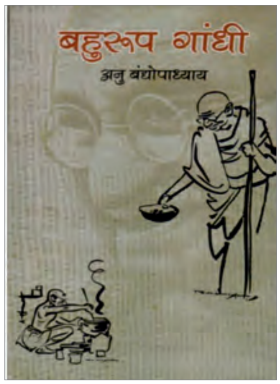

(प्रस्तुत कहानियाँ एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तक 'बहुरूप गांधी' से साभार।)

गांधी और हिंदी

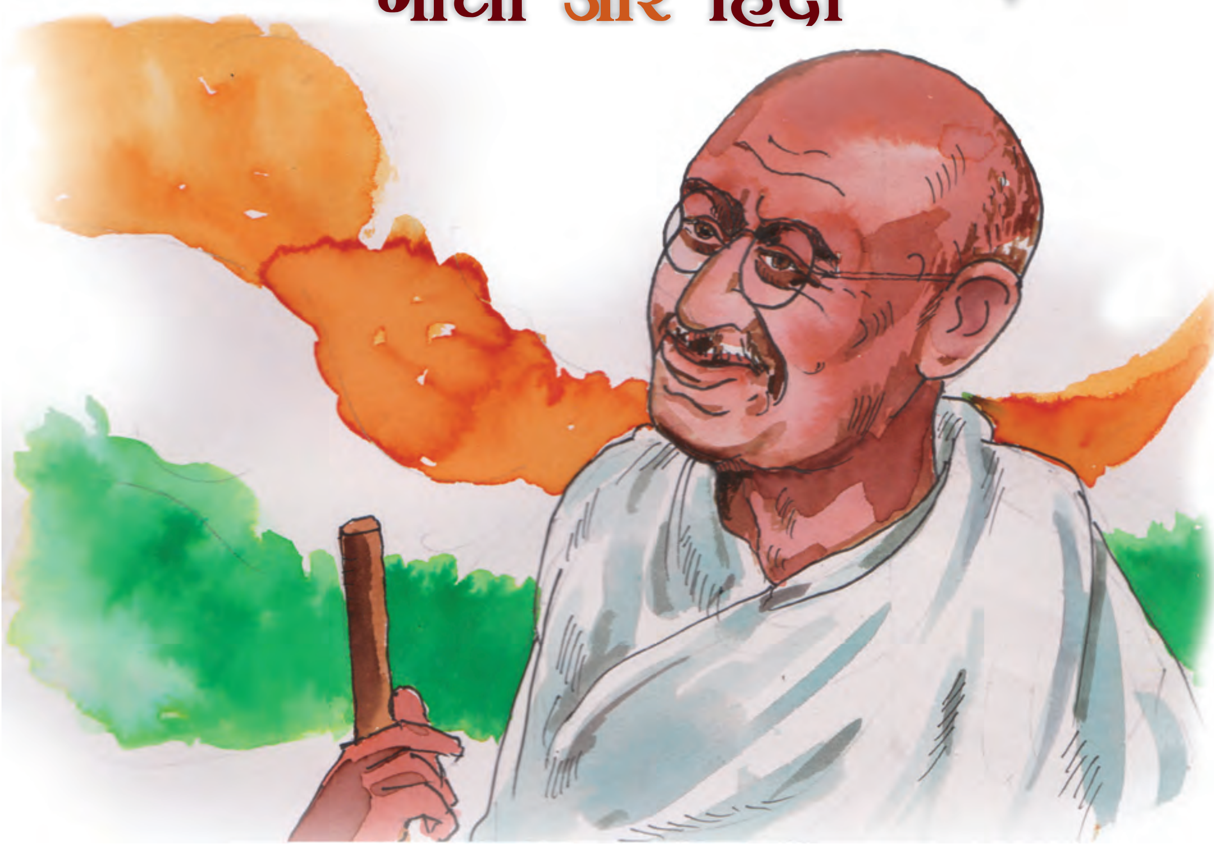

डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय

जन्म : सात जनवरी, 1956

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी, राजनीति, पत्रकारिता), पीएच.डी.।

लेखन एवं भागीदारी : 300 से अधिक शोध-आलेख, 10 मौलिक ग्रंथ प्रकाशित। कई साहित्यिक, सामाजिक संस्थाओं से संबद्ध एवं उसके पदाधिकारी, 300 से अधिक राष्ट्रीय संगोष्ठियों एवं सम्मेलनों में आलेख पाठ और भागीदारी। साहित्य लेखन, हिंदी सेवा : प्रचार-प्रसार, साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों में भागीदारी।

संपर्क : मोबाइल : 9434494430

ई-मेल : dromprakashpandey@gmail.com

महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति, स्वतंत्रता आंदोलन के अन्यतम नायकों में शीर्षतम स्थान है। उनका स्वाधीनता-संग्राम और स्वाधीनता प्राप्ति में ऐतिहासिक अमिट योगदान है। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में आजादी की ज्वाला को उद्दीप्त करने वाले महापुरुषों व नेताओं में महात्मा गांधी का नाम अग्रगण्य है। महात्मा गांधी महामानव, राजनेता, देशभक्त, स्वतंत्रता प्रेमी, समाजसुधारक अनन्य हिंदी सेवी तथा सांप्रदायिक एकता के अग्रदूत थे। गांधीजी विश्व विख्यात राजनीतिज्ञ, राष्ट्रनायक भारतीय पत्रकारिता के प्रतिमान परम आदर्शवादी तथा अनेक आंदोलनों के जन्मदाता हैं। गांधीजी राष्ट्रभाषा हिंदी के अनन्य सेवी, अद्वितीय प्रचारक-प्रसारक, राष्ट्रभाषा चिंतक तथा समर्थक थे। हिंदी के प्रति उनके मन में सम्मान और स्वीकृति का भाव हमेशा बना रहा। हिंदी उनके लिए राष्ट्रीय अस्मिता थी। आमतौर पर यह धारणा है कि कांग्रेस का आंदोलन जैसे-जैसे बढ़ता गया, कांग्रेस के नेताओं ने हिंदी को इस देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। शुरू में लोकमान्य तिलक ने हिंदी को इस देश की राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के संकेत दिए और बाद में महात्मा गांधी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते हुए देश के लिए इसकी अनिवार्यता तथा प्रचार-प्रसार में पूरा जीवन लगा दिया। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस देश की राष्ट्रीयता की आधारशिला है। राष्ट्र की परिकल्पना बिना राष्ट्रभाषा के अधूरी है।

भाषा केवल भाषा, भावों, विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है, अपितु वह देश की संस्कृति, धर्म, दर्शन लोक परंपराओं की संवाहिका है। वस्तुतः भाषा संस्कृति एवं

मातृभूमि के समवेत भाव को ही राष्ट्र कहते हैं। इन्हीं तीनों तत्वों के समन्वय से राष्ट्रीयता की अवधारणा प्राप्त होती है। गांधीजी के हिंदी प्रेम में व्यापकता तथा गहराई थी। उनकी मान्यता थी कि किसी भी देश की सभ्यता-संस्कृति, इतिहास का सम्यक ज्ञान देश की राष्ट्रभाषा में ही संभव है। गांधी ने अंग्रेजी को शासन अथवा शिक्षा में लाए रखने का सदैव घोर विरोध किया। कारण वे जानते थे कि भारत को गुलामी से मुक्त करने के लिए समाजवादी, गणतांत्रिक भारत के निर्माण के लिए, देश की एकता के लिए हिंदी जरूरी है, अंग्रेजी नहीं।

> **गांधी ने कहा था–"लाखों लोगों को अंग्रेजी का अध्ययन कराना उन्हें गुलाम बनाना है। मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी उसने सबको गुलाम बना दिया है। अगर स्वराज अंग्रेजी बोलने वाले भारतीय लोगों को और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो निःसंदेह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज करोड़ों भूखे मरने वालों, निरक्षरों व दलितों और इन सबके लिए होने वाला हो तो हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।**

हिंदी के निर्माताओं में, उसके प्रचार-प्रसार में, सेवा में उसके महत्व को दर्शाने में महात्मा गांधी का नाम शीर्षस्थ है। हिंदी ने अपने देश की स्वतंत्रता और संस्कृति की पराधीनता के विरुद्ध व्यापक एवं दीर्घकालानी संघर्ष किया और उससे मुक्ति दिलाई। गांधीजी चाहते थे कि हिंदी भाषा तथा अन्य प्रांतों की भाषाएँ विकसित हों, उन्नत हों, उनमें शासन और शिक्षा हो, इसी में देश का कल्याण और विकास है। राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा, संवर्द्धन, विकास और प्रचार-प्रसार का जो दायित्व गांधीजी ने निभाया, प्रयास किया, वह अतुलनीय है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा बनाने के लिए अहिंदी भाषा प्रांतों में राष्ट्रभाषा प्रचार समितियों का जाल बिछा दिया था। उन्होंने कहा था, "आज की पहली और सबसे बड़ी देश सेवा, समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़ें तथा हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करें क्योंकि हर भाषा के अपने संस्कार और संस्कृति होती है"। भाषा का प्रश्न हमारी राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक लगाव तथा राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़ा हुआ है। हमें अपने देश की एकता, अस्मिता की रक्षा के लिए सर्वप्रथम अपनी भाषा, राष्ट्रभाषा की रक्षा करनी होगी। हिंदी भारतीय की पहचान है। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का काम अहिंदी भाषी नेताओं तथा विद्वानों ने आरंभ किया था। गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, केरल, बंगाल सभी क्षेत्रों के महापुरुषों–दयानंद सरस्वती, राष्ट्रपिता बापू, लोकमान्य तिलक, बंकिमचंद्र चटर्जी, केशवचंद्र सेन जैसे नेताओं ने राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ करने तथा देश को आजादी दिलाने के लिए हिंदी भाषा के महत्व को समझा था। गांधीजी ने भारत राष्ट्र की एक भाषा के साथ एक ही देवानागरी लिपि होने की आवश्यकता पर बल दिया था। हिंदी भारतीय भाषाओं में निहित ज्ञान राशि को आत्मसात कर समष्टि की भाषा बन चुकी है। इसने कई भाषाओं के तमाम शब्दकोश को सहजता से अपनाया है तथा भारत के सामयिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति में पूर्णतः सक्षम है।

गांधीजी 1906 से ही देशी भाषाओं के माध्यम के लिए वकालत करने लगे थे। 1917 से उन्होंने स्पष्टतः उसका प्रचार प्रारंभ कर दिया। उनका कहना था कि विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग पर जो बोझ पड़ता है, वह असह्य है। यह बोझ हमारे बच्चे तो उठा सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने लायक नहीं रह जाते। भारत में स्वाधीनता आंदोलन के साथ स्वभाषा आंदोलन भी चलता रहा। गांधीजी ने न केवल हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा, बल्कि वे उसे शासन, शिक्षा, व्यापार, वाणिज्य, न्याय की भाषा बनाने के भी पक्षधर थे। वे हर हालत में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। राष्ट्रपिता ने कहा था कि 'हिंदी के बिना राष्ट्र गूँगा है'। गांधीजी का हिंदी प्रेम सर्वविदित और स्पष्ट है। गांधीजी ने स्वराज के साथ जुड़े भाषा के सवाल को बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार करके सुलझाया है। विदेशी भाषा किसी भी देशवासी को किस तरह गुलाम बना सकती है। इस संबंध में उन्होंने स्पष्ट मत व्यक्त किया था। गांधी ने कहा था–"लाखों लोगों को अंग्रेजी का अध्ययन कराना उन्हें गुलाम बनाना है। मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी, उसने सबको गुलाम बना दिया है। अगर स्वराज अंग्रेजी बोलने वाले भारतीय लोगों को और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो निःसंदेह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज करोड़ों भूखे मरने वालों, निरक्षरों व दलितों और इन सबके लिए होने वाला हो तो हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है। गांधीजी द्वारा स्थापित हिंदी प्रचार सभा परिषदें करोड़ों लोगों को हिंदी सिखा चुकी हैं। गांधीजी ने हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का संकल्प किया और सर्वप्रथम दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार का प्रस्ताव रखा और बड़ी दृढ़ता के साथ उसे पारित करवाया। सन् 1918 में उन्होंने इंदौर से अपने पुत्र श्रीदेवदास गांधी तथा स्वामी सत्यदेव को मद्रास भेजा। सभी सुशिक्षित तथा देशभक्त भारतवासियों ने गांधीजी के विचारों को स्वीकार किया और कई संस्थाओं तथा उनके माध्यम से हजारों प्रचारकों ने हिंदी के प्रचार में अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया। हिंदी का प्रचार गांधीजी के राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख अंग बन गया। इसीलिए हमारे संविधान में हिंदी को राजभाषा का स्थान दिया गया है। 1946 में गांधीजी ने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की रजत जयंती के उद्घाटन के अवसर पर दीक्षांत भाषण देते हुए कहा था, "कुछ समय के बाद हिंदुस्तान आजाद होगा और आजाद हिंदुस्तान की राजभाषा हिंदी

होगी। इसलिए मैं युवा पीढ़ी से अपील करता हूँ कि वे अभी से हिंदी सीखना शुरू करें और देश के आजाद होते ही शासन के समस्त कार्यकलाप हिंदी में संपन्न करें ताकि अंग्रेजी का वर्चस्व अपने आप समाप्त हो जाए।" वर्धा शिक्षा सम्मेलन 1937 में भी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होने पर ही बल दिया गया।

शंकर दयालसिंह ने लिखा है कि, "1916 में भाषा और लिपि के संबंध में एक सभा हुई, जिसमें लोकमान्य तिलक ने देवनागरी लिपि और हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाए जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, किंतु उन्होंने अपना भाषण अंग्रेजी में दिया।"

गांधीजी राष्ट्रीय अस्मिता के प्रबल पक्षधर थे। वे राष्ट्रभाषा को इतना महत्व देते थे कि वे किसी भी मूल्य पर वे भाषा के स्तर पर समझौते के लिए तैयार नहीं थे। मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा के संबंध में गांधीजी का दृढ़ निश्चय उनकी वाणी में सर्वत्र मुखारित हुआ है। भारत की आत्मा को पहचानने के लिए हिंदी भाषा का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। प्रसिद्ध हिंदी सेवी, साहित्यकार बाल शौरिरेड्डी ने अपने लेख 'राष्ट्रभाषा हिंदी और महात्मा गांधी' में लिखा है—"सारे देश को एक सूत्र में जोड़ने के लिए एक राष्ट्रभाषा की परिकल्पना करने वाले महनीय व्यक्तियों में आचार्य केशवचंद्र सेन, दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, काका कालेलकर, सुभाषचंद्र बोस आदि के नाम आदर के साथ ले सकते हैं।" दरअसल राष्ट्रीय आंदोलन के साथ राष्ट्रभाषा की परिकल्पना प्रायः सभी राष्ट्रीय नेता एवं विद्वान करते रहे हैं, परंतु राष्ट्रभाषा की आवश्यकता और उनका व्यापक प्रचार करने वाले सूत्रधार महात्मा गांधी रहे हैं। सन् 1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन का आठवाँ अधिवेशन इंदौर में संपन्न हुआ। उस अधिवेशन के सभापति महात्मा गांधी थे। उस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा की स्पष्ट व्याख्या की और हिंदीतर प्रदेशों में उसके प्रचार की आवश्यकता पर जोरदार शब्दों में समर्थन किया। उन्होंने कहा था, "साहित्य का प्रदेश भाषा की भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रांत होगी, तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। जैसे भाषक वैसी भाषा। भाषा सागर में स्नान करने के लिए पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण से पुनीत महात्मा आएँगे तो सागर का महत्व स्नान करने वालों के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए साहित्य की दृष्टि से भी हिंदी का स्थान विचारणीय है।" (राजभाषा हिंदी, पृ.-25)।

बापू का यह कथन सदा स्मरणीय है—"अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए दी जाने वाली हमारे लड़कों और लकड़ियों की शिक्षा बंद कर दूँ और सारे शिक्षा को तथा प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त करा दूँ। मैं पाठ्यपुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूँगा, वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे अपने आप चली आएँगी। यह एक ऐसी बुराई है जिसका तुरंत इलाज होना चाहिए।" शंकर दयालसिंह के शब्दों में—"एक विचित्र संयोग ही है कि 1885 में भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र का देहावसान हुआ और उसी वर्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। तब से हिंदी शनैः-शनैः अपना स्थान लोगों के दिलों में बनाती चली गई। कारण इसे राष्ट्रीयता का द्योतक बनाया गया। 1917-18 में जब गांधीजी के हाथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर तथा राष्ट्र नेतृत्व गया तभी से भारतीय भाषाओं तथा विशेषकर हिंदी को सही मानों में राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त होने लगा। इसके लिए हिंदी और अहिंदी दोनों क्षेत्रों में जागृति उत्पन्न हुई। गांधीजी ने यदि राष्ट्रभाषा को राष्ट्र की भाषा आह्वायित न किया होता तो कभी भी राष्ट्रीय चेतना इस प्रकार उत्पन्न नहीं होती।" (हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा, लेखक-शंकर दयाल सिंह, पृ.-12)।

महात्मा गांधी ने कलकत्ता में 27 दिसंबर, 1917 को अपने एक भाषण में कहा था, "यदि हम अंग्रेजी के आदी नहीं हो गए होते, तो यह समझने में हमें देर नहीं लगती कि अंग्रेजी के शिक्षा माध्यम होने से हमारी बौद्धिक चेतना जीवन से कटकर रह गई है, हम अपनी जनता से अलग हो गए हैं, जाति के सर्वश्रेष्ठ विभागों का काम रुक गया है। अंग्रेजी के कारण बहुत दुर्गति हुई है। यह तो राष्ट्रीय शोक का विषय है। आज की पहली और सबसे बड़ी समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़ें और हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें। हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्रवाइयाँ अपनी-अपनी भाषाओं में चलानी चाहिए तथा हमारी कार्रवाइयों की भाषा हिंदी होनी चाहिए।" गुजरात के भड़ौच में आयोजित द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में 20 अक्तूबर, 1917 को गांधी ने स्पष्ट रूप से कहा कि केवल हिंदी राष्ट्रभाषा हो सकती है, हिंदी और उर्दू एक ही है, केवल उनकी शैली में अंतर है। गांधीजी और राष्ट्रभाषा या हिंदी को कृत्रिम रूप से समझने के लिए उनके साथ हमें कुछ प्रसंगों में झाँकना होगा। सन् 1936 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन के अवसर पर गांधीजी ने भारतीय साहित्य परिषद के निर्माण का स्वागत किया। उन्होंने उसकी अध्यक्षता स्वीकार कर ली। 16 जून, 1920 के 'यंग इंडिया' में गांधीजी ने दक्षिण वालों के संबंध में लिखा था—"आज अंग्रेजी का प्रभुत्व करने के लिए वे जितनी मेहनत करते हैं, उसका आठवाँ हिस्सा भी हिंदी सीखने में करें, तो बाकी हिंदुस्तान के जो दरवाजे आज उनके लिए बंद हैं, वे खुल जाएँ और वे इस तरह हमारे साथ एक हो जाएँ, जैसे पहले कभी नहीं थे। कोई भी द्रविड़ यह न सोचे कि हिंदी सीखना जरा भी मुश्किल है। अगर रोज के मनोरंजनों में से थोड़ा-सा समय निकाला जाए, तो साधारण आदमी एक साल में हिंदी सीख सकता है। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि द्रविड़ बालक अद्भुत सरलता से हिंदी सीख लेता है।"

शंकर दयालसिंह लिखते हैं—"महात्मा गांधी के प्रयास से 1935 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने हिंदी भाषा को स्वीकार किया। उस समय कांग्रेस ने हिंदी के संबंध में यह प्रस्ताव स्वीकार किया--कांग्रेस की यह सभा, प्रस्ताव पास करती कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और कमेटी की कार्रवाई आमतौर पर हिंदुस्तानी में (हिंदी में) चलेगी, अगर कोई वक्ता हिंदुस्तानी न जानता हो या दूसरी आवश्यक पड़ने पर अंग्रेजी भाषा इस्तेमाल की जा सकती है।" उत्तर भारत के हिंदीतर प्रदेशों में जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा, बंगाल, असम इत्यादि प्रांतों में तथा प्रवासी भारतीयों को हिंदी सिखाने के लिए विदेशों में भी हिंदी प्रचार हेतु सन् 1935 में महात्मा गांधी ने वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना की। फिर क्रमशः विभिन्न राज्यों में अनेक स्वैच्छिक संस्थाएँ स्थापित हुईं। उनके माध्यम से हिंदी प्रचार का क्षेत्र व्यापक हुआ। बालशौरि देड़ही का यह कथन बिलकुल सत्य है—"इसके परिणामस्वरूप भारत जब आजाद हुआ, तब संविधान की रचना करते समय हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रश्न उठा। यदि हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी प्रचार न हुआ होता तो कदापि हिंदी राजभाषा के रूप में स्वीकृत न होती। अतः गांधीजी की दूरदर्शिता के कारण ही हिंदी राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा एवं राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्राप्त कर सकी। भारत के स्वतंत्र होने पर एक ब्रिटिश पत्रकार ने गांधी से संदेश माँगा तब गांधीजी ने तुरंत कह दिया था—"दुनिया से कह दो गांधी अंग्रेजी भूल गया।" (राजभाषा हिंदी, पृ.-28)।

हिंदी हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आंदोलन की ही नहीं, अपितु राष्ट्रीय चेतना एवं स्वतंत्रता आंदोलन की अभिव्यक्ति की भाषा भी रही है। भारत का जन-जन इसका प्रयोग करने में आत्मसम्मान तथा आत्मगौरव की अनुभूति करता था। सच्ची एवं शुद्ध भारतीयता की यह परख समझी जाती थी। इसलिए महात्मा गांधी ने उसे राष्ट्रभाषा के पद पर विभूषित किया था। गांधीजी आजीवन हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार, संवर्द्धन, उन्नति तथा उसे सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए प्राणपण से समर्पित रहे। हिंदी और गांधीजी को अगर हम पर्याय मानें तो कोई अनुचित नहीं, अतिशयोक्ति नहीं। भारत में अभी तक इतना बड़ा हिंदी सेवक आज तक पैदा नहीं हुआ।

भवानी प्रसाद मिश्र

(29 मार्च, 1914 - 20 फरवरी, 1985)

भवानीजी हिंदी के प्रसिद्ध कवि तथा गांधीवादी विचारक थे। वह 'दूसरा सप्तक' के प्रथम कवि हैं। गांधी-दर्शन का प्रभाव तथा उसकी झलक उनकी कविताओं में साफ देखी जा सकती है। उनका प्रथम संग्रह 'गीत-फ़रोश' अपनी नई शैली, नई उद्‌भावनाओं और नए पाठ-प्रवाह के कारण अत्यंत लोकप्रिय हुआ। प्यार से लोग उन्हें भवानी भाई कहकर संबोधित किया करते थे।

उन्होंने स्वयं को कभी भी निराशा के गर्त में डूबने नहीं दिया। जैसे सात-सात बार मौत से वे लड़े वैसे ही आजादी के पहले गुलामी से लड़े और आजादी के बाद तानाशाही से भी लड़े। आपातकाल के दौरान नियमपूर्वक सुबह-दोपहर-शाम तीनों वेलाओं में उन्होंने कविताएँ लिखी थीं जो बाद में 'त्रिकाल संध्या' नामक पुस्तक में प्रकाशित भी हुईं।

भवानी भाई को 1972 में उनकी कृति 'बुनी हुई रस्सी' पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। 1981-82 में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का साहित्यकार सम्मान दिया गया तथा 1983 में उन्हें मध्य प्रदेश शासन के शिखर सम्मान से अलंकृत किया गया।

'बा' की याद में

तुमको देखा नहीं कदाचित
लेकिन लगता है कि बहुत देखा है तुमको
जैसे पाँव दबाता था मैं मेरी माँ के
ऐसे पास बैठ कर मानो सेवा की है।
तुमने झुक-झुक कर परसी मुझे रसोई
खोई-खोई वृत्ति न जाने क्यों मेरी
    यों हो जाती
जब भी बात तुम्हारी या
अपनी माँ की मन में आती है
मुझको लगता है तुम मेरे मन में माँ से
    एक रूप हो
वैसा ही कद, वैसा ही आश्वस्त
किंतु चिंतित-सा चेहरा
वैसी ही बारीक नजर,
वैसा ही घर बाहर पर पहरा
कौन कहाँ बैठा है क्या करता है, क्या
    करना था उसको।
तुम बापू से अधिक तीव्र थीं
तुमने शायद एक नजर में उनको
पूरा समझ लिया था
और उन्हें लग गए बरस चालीस
समझते हुए तुम्हारी सारी बातें
जब तुम चली गईं तब उन्होंने पूरा समझा
और लिखा संयम समेट कर
मुक्त हो गई वह तो जाकर, किंतु दुखी हूँ,
उसको खोकर मैं किस हद तक।

(यह रचना 'बा' पूजनीय कस्तूरबा गांधी पर है।)

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
अनाज, दालें, तिलहन आदि	**अन्नं- द्विदलम् तैलबीजा- दीनि**	**अनाज, दालां, तिलहन आदि**	**अनाज, तिलहन वग़ैरह**	**अनाज, दालॅ, तिलफल बेत्रि**	**अनाज, दालियूं, तेलीबिज वग़ैरह**	**धान्यें, डाळी, गाळितायें धान्य**	**धान्याचो, दाणो, कुड्डणां, तेलबिंया आनी हेर**	**अनाज, दाळ कठोळ**	**अन्न, दाल, तेलहन इत्यादि**	**शस्य, डाल**
अरहर	आढकी तुरी	हरहर	अरहर	अरहर	थूहर, रहड	तुरी	तुर, तोर	तुवेर, तुवर	अरहर, रहर	अडहर, अडर
अलसी	अतसी	अलसी	अलसी	ॲलिश	हल्सी, अल्सी	जवस	अगशे, अळशी	अळसी	आलस, तिसी	अतसी तिसि
उड़द	माषः	मांह	उडद (माश)	माह	मांहिं	उडीद	उडद	अडद	मास	बिउली, कलाइ
गेहूँ	गोधूमः	कणक	गेहूँ (गँदुम)	कनख	कणिक	गहू	गंव	घउं	गहॅुं	गम, गोधूम
चना	चणः, चणकः	छोले	चना	चन	चणा	हरभरा, चणा	चणो	चणा	चना	छोला, चाना
चावल	तण्डुलः	चौल	चावल	तोमल	चांवर	तांदुळ, भरा	तांदुळ	चोखा, भात	चामल, भात	चाल, चाउल
छोले	चणः, चणकः	छोले	छोले, चना	छोल	छोला	सोलाणा, हरभरा	काबूली चणो	काबूली चणो	छोला काबुजी चना	बुट, चाना काबुली छोला
जौ	यवः	जौं	जौ	वुशुक	जव	जव	वरय, सवाद	जव	जौ	यब, बर्लि
ज्वार	यवनालः	जुआर	जवार	जवार	जूअरि	ज्वारी	जोंदळो	जुवार	ज्वार, जुनेलो	जोयार, गम जातीय शस्य
तिल	तिलम्	तिल	तिल	तेल	तिर	तीळ	तीळ	तल	तिल	तिल
धान	धान्यम्, व्रीहिः	धान	धान	दानि	सारियूं, सार्यू	साळी, भात	भात	डांगर, कमोद	धान	धान, धान्य
बाजरा	वज्रकः	बाजरा	बाजरा	बाजर	बाझिरी	बाजरी	बाजरी	बाजरी	बाजरा	बाजरा, गम जातीय शस्य
मकई, मक्का	मकायः, कटिजः	मकई, मक्की	मक्का	मकॉय	मकई, मकाई	मक्का	मको	मकाई	मकै	मकाइ, मक्का
मटर	कलायः, हरेणः	मटर	मटर	मटर	मटर	मटर, वाटाणा	वाटाणो	वटाणा	मटर, केराउ	मटर, कड़ाइ शुँटिर दाना
मसूर	मसूरः	मसर	मसूर	मुसुर	मसूर	मसूर	मसूर	मसूर, मसुर	मुसुरी, मुसुरो	मसूर, मसुरी मुसुर
मूँग	मुद्गः	मुंग	मूँग	म्वंग	मुङ	मूग	मूग	मग	मुँग, मुगी	मुग, डाल
मूँगफली	मण्डपी	मुंगफली	मूँगफली	जलगोज़	बोहीमुङ	भुईमूग	मसमी भिकण	मगफळी	चिनियाँ-बदाम, बदाम	चीने बादाम

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगु	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोडो
शस्य,अन्न आञ्जा, तिल आदि	**महै,मरोङ् हवाइशिङ्, थाओ शुङ्ब याबा मरु असिनाचिङ्बा**	**शस्य, रबि फसल, तैल, जातीय पदार्थ आदि**	**धान्यमुलु, पप्पु दिनुसुलु नूने वित्तनमुलु मोदलैनवि**	**दानियंगळ्, परुप्पुगळ् ऐण्णेय्, विदैगळ मुदलियवै**	**धन्यङ्ड़ळ्, परिप्पकळ्, एण्णक्कुरु/ ककक् मुतलायव**	**धान्य, बेळे, कुसुबि मुंतादवु**	**अनाज, दालां, तेल-बीऽ बगैरा**	**दाल तिलमित्र एमाम क**	**अन्न, दालि तेलहन आदि**	**फसल, दालि फोलेर, सिबिं**
माह, आञ्जा रहर	माइरोंबी, उरोल	हरड़	कंदुलु	तुवरै	तुवर, तुवरप्परिप्पु	तोगरि	ढांगर	राहेड़	राहड़ि	खख्लिं
अतसी, तिचि	मरुना थाओ शुम्बा याबा	पेशी	अविसेलु	आळि विदै	अलसी, चणक्कुरु	अगसे	अलसी	टिसि	तीसी	देमसि बेगर
माटिमाह	शगोल हवाइ	बिरि डालि	मिनुमुलु	उळुंदु	उळुन्नुं	उद्दु	मांह	रांबडा	उड़ीद	सबाइ
गम	गेहु	गहम	गोधुमलु	गोदुमै	गोतंपुं	गोदि	कनक	गुहुम	गोहुम, गहुम	गेहु, गम
बुट	चना	चणा	शनगलु	कडलै	कटळ	कडले	छोले, चने	बुट	बूट, बदाम	बुत, साना
चाउल	चेङ्	चाउल	बिय्यमु	अरिसि	अरि	अक्कि	चौल	चाउले	चाउर	माइरं
भजा, बुट	चना अचौबा मखल अमा	बुट, चणा	सुंडलु	कोत्तक्कडलै	पच्च क्कटल	कडले	छोले काबली	बुट	काबुली बूट	बुत, एवनाय बुत
ज-धान	जौ, बर्लि	जअ	यवलु	बार्लि, वार् गोदुमै	यवम्, बर्लि	जवेगोदि	जौ	जब	जओ, यव	जब माइ
जोवार	ज्वार, चनाल मखल अमा	जबार	जेन्नलु	चोळम्	चोळम् (चेरिय चोळम्)	जोळ	जुआर	गुहुम	जनेर	जवार
तिल	थोइदिङ्	राशि	नुव्वलु	ऍळ्ळु	ऐळ्ळुं	ऐळ्ळु	तिल	तिलमित्र	तिल	सिबिं
धान	फौ	धान	वड्लु	नेल्	नेल्लुं	भत्त	धान	होड़ो	धान, धान्य	माइ
बज्रा	चनाल	बाजरा	सज़्जलु	कंबु	बजर	नवणे	बाजरा	बाजड़ा	आजरा	बज्रा, थेन्थं
माकै	चुजाक	मका	मोक्क-जोन्नलु	मक्काचोळम्	मक्कच्चोळम्	मुसुकिन जोळ	मक्क, मक्की	जंडरा	मकै	जुखाम
मटर, माह	हवाइथराक	मटर	बटाणीलु	पट्टाणि	पच्चप्पट्टाणि	वटाणि	मटर	मटर	मटर	मथर बुत
रंगचुवा माह	मुशोरी	मसुर डालि	मसूर पप्पु	सिवप्पु तुवरंपरुप्पु	चुमन्न-तुवरप्परिप्पुं	केंपु तोगरि	मसर	मिसरिदअ्ल	मसुरी	मुसुर दालि
मगु, मगुमाह	मुक	मुग	पेसलु	पयरु	चेरुपयर	हेसरु	मुंगी	मुग	मूङ, खेरही	मुगु दालि, सिना
चिना बादाम	लैबाक् हवाई	चिना बादाम	वेरु शनगलु	निलक्कडलै	निलक्कटल, कप्पलण्टि	कडले कायि, शेंगा	मुंगफली	बादाम	चिनियाँ-बदाम, मूङ बदाम	बादाम

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

बापू की पहली और सर्वश्रेष्ठ जीवनियाँ

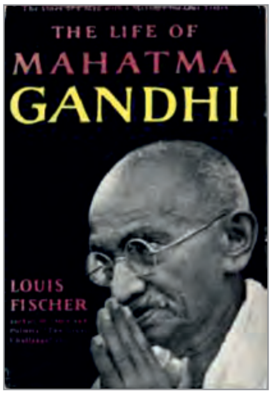

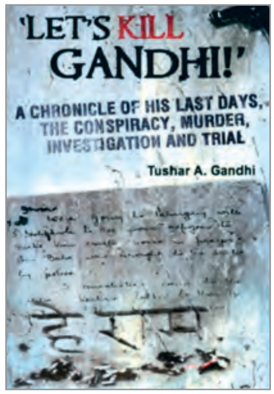

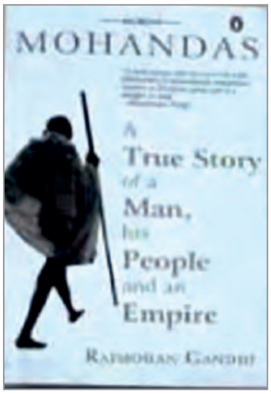

विवेक शुक्ल

वर्ष 1985 से पत्रकारिता में सक्रिय। प्रिंट, टीवी और ऑनलाइन मीडिया का अनुभव। हिंदी में लेखन शुरू करने के बाद करीब 25 वर्षों से अंग्रेजी में भी कलम चला रहे हैं। नवभारत टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स, दैनिक जागरण, इंडियन एक्सप्रेस, बीबीसी, इक्नॉमिक टाइम्स, मेल टुडे आदि में आठ हजार से अधिक लेख, रिपोर्ताज, इंटरव्यू।

दक्षिण एशिया, भारतवंशी, बिजनेस, दिल्ली, आर्किटेक्चर जैसे विषयों में लिखने-पढ़ने में विशेष दिलचस्पी। शिक्षा-ग्रेजुएशन (हिंदू कॉलेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी), पोस्ट ग्रेजुएशन, मेरठ यूनिवर्सिटी।

संप्रति : एक शोध संस्थान में फेलो।

संपर्क : vivekshukladelhi@gmail.com

महात्मा गांधी को दिवंगत हुए अब 70 वर्ष से अधिक हो रहे हैं, पर जरा देखिए कि उनके व्यक्तित्व के किसी पक्ष या उनके विचारों पर कलम चलाने की लेखकों, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों आदि में प्यास बुझी नहीं है। दुनियाभर के सैकड़ों लेखकों का उन पर लिखने का सिलसिला निरंतर जारी है। ये सभी गांधी की वर्तमान में प्रासंगिकता से लेकर उनकी शख्सियत के तमाम पक्षों पर लिख रहे हैं। सच बात तो यह है कि महात्मा गांधी पर अब तक लिखी गईं जीवनियों की गिनती करना असंभव है। गांधीवादियों से लेकर सारी दुनिया के विद्वानों ने उनके ऊपर सैकड़ों की संख्या में जीवनियाँ लिखी हैं। अब भी उन पर जीवनियाँ बाजार में आ रही हैं। उन्हें पढ़ा जा रहा है, उन पर चर्चा हो रही है, लिखा जा रहा है।

गांधीजी को जानने-समझने के लिए दो जीवनियों को पढ़ना अनिवार्य है। पहली, ईसाई मिशनरी जोसेफ डोक द्वारा लिखी गई जीवनी–'एम.के. गांधी : एन इंडियन पैट्रियाट इन साउथ अफ्रीका'। यह गांधीजी पर पहली जीवनी है। यह तब लिखी गई थी जब बापू को एम.के. गांधी के रूप में दक्षिण अफ्रीका में ही जाना जाता था। वे वहाँ पर भारतवंशियों और अश्वेतों के हक में सक्रिय थे। दूसरी, महान लेखक लुई फिशर की कलम से लिखी 'द लाइफ ऑफ महात्मा'।

अमेरिका के यहूदी लेखक लुई फिशर ने यदि बापू की जीवनी न लिखी होती तो संभव है कि दुनिया की बापू के बारे में अधिक-से-अधिक जानने की प्रबल इच्छा ही नहीं होती। दरअसल रिचर्ड एटनबर्ग ने इस तथ्य को बार-बार माना कि उन्होंने 'द लाइफ ऑफ महात्मा' को पढ़ने के बाद ही गांधी पर फिल्म बनाने के संबंध में सोचना शुरू किया। निश्चित रूप से 'गांधी' फिल्म को देखकर अखिल विश्व गांधीजी को और करीब से जानने लगा। 'गांधी' फिल्म मूलतः और अंततः लुई फिशर की लिखी जीवनी पर ही आधारित है। लुई फिशर ने जीवनी बिलकुल उपन्यास शैली में लिखी है। इसे पढ़ते ही

आप इससे जुड़ जाते हैं। इसका आप पर चुंबकीय तरीके से असर होता है। कहना न होगा कि गंभीर साहित्य अध्येताओं से लेकर विद्यार्थियों के लिए यह एक समान उपयोगी जीवनी है। लुई फिशर की लिखी जीवनी का पहला अध्याय बापू की हत्या से लेकर उनकी शवयात्रा पर आधारित है। यानी उन्होंने अंत को सबसे पहले ले लिया है। इस तरह का साहस फिशर ही कर सकते हैं। यह जीवनी गांधीजी के जीवन में गहरे से झाँकती है। निःसंदेह फिशर की कलम से निकली जीवनी महात्मा गांधी को ब्राजील, रूस, मेक्सिको, फ्रांस, घाना, अमेरिका, मिस्र, अरब देशों में लेकर जाती है।

अमेरिकी लेखक लुईस फिशर 25 जून, 1946 को दिल्ली आए और शाम लगभग पाँच बजे गांधीजी से मिलने वाल्मिकी मंदिर पहुँचे। वे जब वहाँ पर पहुँचे तो पंडित जवाहरलाल नेहरू और मृदुला साराभाई समेत बहुत से लोग मौजूद थे। कुछ ही पलों के बाद बापू अपने मंदिर के कमरे से प्रकट होते हैं। बापू उन्हें तुरंत पहचान लेते हैं। वे फिशर से अहमदाबाद में मिल चुके थे। दोनों में मित्रता थी। वे फिशर का हालचाल पूछते हैं। दोनों में प्रेम से कुछ देर तक बातचीत होती रहती है। लुई फिशर इन सब बातों का गांधी पर लिखी जीवनी 'द लाइफ ऑफ महात्मा' में उल्लेख करते हैं।

लुई फिशर दिल्ली में रोज गांधीजी से एक घंटे के लिए मिलने लगे। वे मौलाना आजाद के किंग जॉर्ज रोड (अब मौलाना आजाद रोड) स्थित आवास में भी जाते। (जहाँ अब विज्ञान भवन है, वहीं होता था मौलाना आजाद का सरकारी बंगला)। वे मौलाना आजाद से बापू की शख्सियत को समझने की कोशिश करते। लेनिन और हिटलर की जीवनियाँ लिखकर सारी दुनिया में एक महान लेखक के रूप में साख बना चुके लुई फिशर दिल्ली में आचार्य कृपलानी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, बापू की निजी डॉक्टर डॉ. सुशीला नैयर से भी मिल रहे थे।

> **"गांधीजी और जोसेफ डोक के बीच मैत्री और फिर घनिष्ठ संबंधों का श्रीगणेश दिसंबर 1907 में हुआ। ये बातें तब की हैं जब दोनों दक्षिण अफ्रीका के शहर जोहांसबर्ग में पड़ोसी थे। कहते हैं, पहली ही भेंट के बाद दोनों में मिलना-जुलना शुरू हो गया था। दोनों में पहली मुलाकात के दौरान धर्म, धर्मतंत्र और दक्षिण अफ्रीका में अश्वेतों की दयनीय हालत पर गंभीर और लंबा मंथन होने लगा। हालाँकि गांधीजी और डोक की काफी व्यस्त दिनचर्या थी, पर दोनों आपस में मिलने का वक्त प्रायः हर रोज ही निकाल लिया करते थे। उन बैठकों के दौरान तमाम मसलों पर सारगर्भित संवाद होता था। डोक अपने मित्र के व्यक्तित्व और तमाम मुद्दों पर उनकी समझदारी से इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने उन पर (गांधीजी) जीवनी ही लिखने का निर्णय ले लिया। जीवनी का शीर्षक था– 'एम.के. गांधी : एन इंडियन पैट्रियाट इन साउथ अफ्रीका'।"**

लुई फिशर यहाँ आम-खास लोगों से मिलने के लिए टैक्सी पर ही सफर कर रहे थे। उन दिनों काली-पीली रंग की टैक्सियाँ चलती थीं। उन्हें एक दिन मोहम्मद अली जिन्ना से भी उनके 10, औरंगजेब रोड (अब ए.पी.जे. कलाम रोड) वाले आवास में मिलना था। जिन्ना ने उन्हें सुबह साढ़े दस बजे मिलने का समय दिया। फिशर अपने होटल से जिन्ना से मिलने टैक्सी पर निकले। पर अभी टैक्सी कुछ ही देर चली थी कि उसमें गड़बड़ चालू हो गई। टैक्सी के सिख ड्राइवर के लाख चाहने के बाद भी बात नहीं बनी। इस बीच जिन्ना से मिलने का वक्त भी हो रहा था। वे किसी तरह ताँगे पर बैठकर ही जिन्ना के घर 35 मिनट देर से पहुँचे। तब नई दिल्ली की सड़कों पर ताँगे भी दौड़ा करते थे। जाहिर है, फिशर उनसे भी गांधीजी और मुस्लिम लीग की भारत को बाँटने की माँग आदि पर गुफ्तगू करने ही गए होंगे। पर जिन्ना उनके देर से पहुँचने से कुछ उखड़ गए थे। बातचीत का श्रीगणेश होने के चंद मिनट के बाद ही जिन्ना ने फिशर को कह दिया—"मुझे कहीं निकलना है।" तो क्या जिन्ना अपने राजनीतिक शत्रु गांधीजी के संबंध में उनके जीवनी लेखक से बात करने के मूड में नहीं थे? लुई फिशर 18 जुलाई, 1946 को गांधीजी से अंतिम बार मिलने के बाद अमेरिका लौट गए। वे लगभग डेढ़ महीने भारत में रहे। इस दौरान उनका अधिकतर समय दिल्ली में गुजरा। यहाँ पर रहते हुए उन्होंने गांधीजी पर पर्याप्त सामग्री जुटा ली।

अब बात करेंगे डोक द्वारा बापू पर लिखी जीवनी की।

महत्वपूर्ण यह है कि जब डोक ने इसकी रचना की थी तब तक महात्मा गांधी ने भारत के स्वाधीनता संग्राम में भी अपनी दस्तक नहीं दी थी। दरअसल वे जब दक्षिण अफ्रीका में अश्वेतों के हितों के लिए संघर्षरत थे उसी समय उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर डोक ने उन पर जीवनी लिखने का फैसला कर लिया था।

गांधीजी और जोसेफ डोक के बीच मैत्री और फिर घनिष्ठ संबंधों का श्रीगणेश दिसंबर 1907 में हुआ। ये बातें तब की हैं जब दोनों दक्षिण अफ्रीका के शहर जोहांसबर्ग में पड़ोसी थे। कहते हैं, पहली ही भेंट के बाद दोनों में मिलना-जुलना शुरू हो गया था। दोनों में पहली मुलाकात के दौरान धर्म, धर्मतंत्र और दक्षिण अफ्रीका में अश्वेतों की दयनीय हालत पर गंभीर और लंबा मंथन होने लगा। हालाँकि गांधीजी और डोक की काफी व्यस्त दिनचर्या थी, पर दोनों आपस में मिलने का वक्त प्रायः हर रोज ही निकाल लिया करते थे। उन बैठकों के दौरान तमाम मसलों पर सारगर्भित संवाद होता था। डोक अपने मित्र के व्यक्तित्व और तमाम मुद्दों पर उनकी समझदारी

से इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने उन पर (गांधीजी) जीवनी ही लिखने का निर्णय ले लिया। जीवनी का शीर्षक था—'एम.के. गांधी : एन इंडियन पैट्रियाट इन साउथ अफ्रीका'। इसका पहला संस्करण 1919 में मद्रास के एक प्रकाशक ने प्रकाशित किया।

डोक ने जीवनी में बापू की पारिवारिक पृष्ठभूमि, बचपन और भारत में अंग्रेजी राज और अश्वेतों की हालत पर उनकी राय को खासतौर पर जगह दी। जीवनी में एक अध्याय बापू के लंदन प्रवास पर भी समर्पित था। डोक ने यह भी लिखा कि गांधीजी ईसा मसीह की शिक्षाओं से बहुत प्रभावित हैं। मुझे लगता है कि ईसाई धर्म और बाइबिल से गांधीजी का पहला साक्षात्कार डोक के साथ रहने के चलते हुआ। अमेरिका के मिल्टन न्यूबेरी फ्रैंट्ज में ईसाई धर्मगुरु को छह अप्रैल, 1926 को लिखे अपने खत में बापू ने कहा, "ईशु मानवता के सबसे महान गुरुओं में से एक थे।" उन्होंने 13 फरवरी, 1926 को पत्र में लिखा : "मैं ईसा मसीह को ईश्वर का एकमात्र पुत्र या ईश्वर का अवतार नहीं मानता, लेकिन मानव जाति के एक शिक्षक के रूप में उनके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा है।" गाँधीजी ने अनेक बार कहा और लिखा कि वे ईसा को अन्य महात्माओं और शिक्षकों की तरह 'मानव प्राणी' ही मानते हैं। ऐसे शिक्षक के रूप में वे 'महान' थे परंतु 'महानतम' नहीं थे। (गांधी वाङ्मय : खंड 34, पृ. 11)

बहरहाल, डोक ने गांधीजी के नेतृत्व में चले उस आंदोलन की भी पर्याप्त चर्चा की, जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में प्रांतीय ट्रांसवेल सरकार द्वारा लाए गए उस कानून का प्रखर विरोध किया था, जिसमें व्यवस्था की गई थी कि वहाँ पर रहने वाले एशियाई मूल के लोगों को हर वक्त अपना पहचान पत्र अपने पास रखना होगा। डोक की तरफ से लिखी गांधीजी की जीवनी के अंतिम अध्याय में उनके धर्म पर राय की विस्तार से चर्चा की गई। हालांकि गांधीजी और डोक के बीच धर्म के मसले पर तीखी मतभिन्नता थी, पर इससे दोनों के रिश्ते कभी प्रभावित नहीं हुए।

जिन दिनों गांधीजी अस्वस्थ थे तब बहुत बड़ी तादाद में गांधीजी के शुभचिंतक उनका कुशल-क्षेम जानने के लिए डोक के निवास पर पहुँचने लगे। और तो और, फरवरी 1908 में जोहांसबर्ग में एक जनसभा का आयोजन वहाँ पर बसे हुए भारतीय, यूरोपीय और चीनी मूल के लोगों ने किया। उस जनसभा में डोक दंपती का आभार प्रकट किया गया, क्योंकि उन्होंने बापू की सेवा की थी। अपने मिशनरी कार्य के सिलसिले में डोक जब उत्तर-पश्चिम रोडेशिया (अब जिम्बाब्वे) के दौरे पर थे तब उनका अचानक 15 अगस्त, 1913 को निधन हो गया था।

डोक की मौत की खबर सुन कर बापू भी सन्न रह गए। उन्होंने डोक पर एक शोक लेख में लिखा, "मैं डोक को कभी भूल नहीं पाऊँगा। वे मिशनरी होने के बावजूद सभी धर्मों का आदर करते थे। वे बहुत ही नेक और मानवीय शख्स थे।"

यदि बात डोक और फिशर की लिखी जीवनियों से हटकर बात करें तो राजमोहन गांधी द्वारा लिखित 'मोहनदास—ए ट्रू स्टोरी ऑफ ए मैन, हिज पीपल एंड एन एंपायर' भी गांधी को समझने के लिहाज से उम्दा जीवनी है। वे बापू के सबसे छोटे पुत्र देवदास गांधी के पुत्र हैं। राज्यसभा सांसद रहे राजमोहन गांधी को उनकी इस पुस्तक के लिए साल 2007 में इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस ने भी सम्मानित किया। यह जीवनी कई भाषाओं और देशों में छप चुकी है।

राजमोहन के अनुज रामचंद्र गांधी ने भी बापू पर कई नाटक लिखे और एक फिल्म भी बनाई। प्रख्यात नाटककार रामचंद्र गांधी ने गांधीजी की पुस्तक 'सच से साक्षात्कार' के छठे और दसवें अध्यायों के आधार पर एक नृत्य नाटिका 'सनमति' लिखी। रामचंद्र गांधी बड़े चिंतक थे। कई विश्वविद्यालयों में पढ़ाते भी रहे। अपने दोनों अग्रजों—राजमोहन और रामचंद्र की तरह गोपालकृष्ण गांधी भी तगड़े लिक्खाड़ हैं। उन्होंने गांधीजी पर 'गांधी एंड साउथ अफ्रीका', 'गांधी इज गॉन—हू विल गाइड अस' और 'गांधी एंड श्रीलंका' लिखी। वे पूर्व आईएएस अफसर हैं और पश्चिम बंगाल के गवर्नर भी रहे हैं। वे अपने बाकी भाइयों की तरह सच में सरस्वती पुत्र हैं। कई भाषाओं में स्तरीय लेखन करते हैं।

बापू के दक्षिण अफ्रीका में बसे संबंधी भी उन पर कलम चलाने में पीछे नहीं हैं। गांधीजी के दूसरे पुत्र मणिलाल की पुत्री इला गांधी ने अपने दादा पर कोई पुस्तक तो नहीं लिखी, पर वे उन पर लगातार निबंध या अन्य सामग्री लिखती रहती हैं। इलाजी दक्षिण अफ्रीका की सांसद भी रहीं। वह नेल्सन मंडेला की पार्टी अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस की चोटी की नेताओं में हैं।

डॉ. उमा धुपलिया मिस्त्री मणिलाल गांधी की पौत्री हैं। उन्होंने 'गांधी प्रिसनर' लिखी। इसमें उन्होंने गांधीजी के अपने चारों पुत्रों के साथ संबंधों को आधार बनाया। इन सबके बीच हुए पत्र व्यवहार के आधार पर उन्होंने बापू के अपने पुत्रों से संबंधों को नए परिप्रेक्ष्य में लिखा। इस पुस्तक को दक्षिण अफ्रीका में बहुत पसंद किया गया।

महात्मा गांधी के प्रपौत्र तुषार गांधी ने कुछ साक्ष्यों और जानकारी के आधार पर एक किताब लिखी 'लेट्स किल गांधी।' इसमें उन्होंने गांधी की हत्या के पीछे के अनसुलझे पहलुओं और वजहों को जानने की कोशिश की है। तुषार गांधी का कहना है कि उनकी किताब लेट्स किल गांधी बापू पर देश के विभाजन और मुसलमानों का पक्षधर होने जैसे आरोप लगाने वालों के लिए करारा जवाब है।

जैसी कि पहले भी चर्चा की गई है कि गांधीजी की आगे भी नई-नई जीवनियाँ और अन्य पुस्तकें आती रहेंगी। पर गांधीजी को समग्र रूप से जानने के लिए हमें जोसेफ डोक और लुई फिशर को तो पढ़ ही लेना चाहिए।

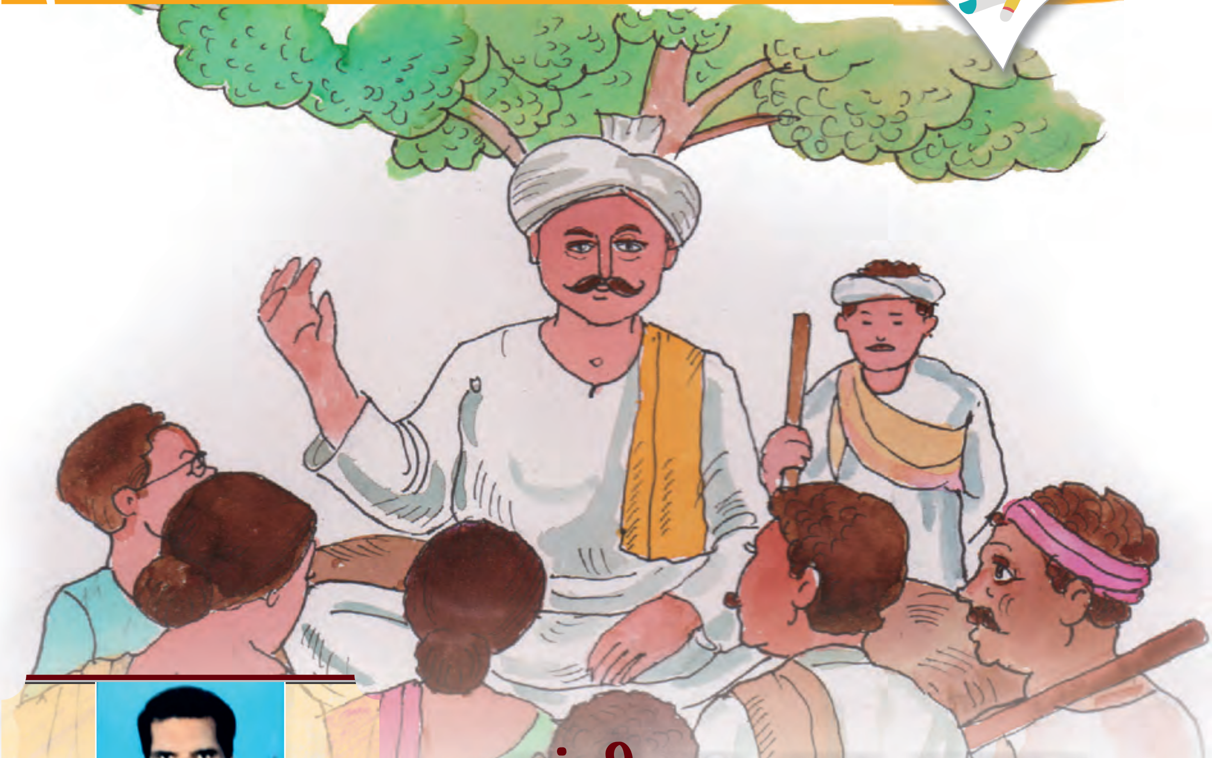

गांधी का ग्राम स्वराज एवं आज का पंचायती राज

डॉ. महीपाल

शिक्षा : अर्थशास्त्र में पीएच.डी. की उपाधि

संप्रति : भारतीय आर्थिक सेवा, भारत सरकार के पूर्व अधिकारी, लेखक स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्किटेक्चर, नई दिल्ली में 'विजिटिंग फैकलटी', 1992-94 में इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नई दिल्ली में 'विकेंद्रित योजना एवं पंचायती राज' विषय पर पोस्ट-डॉक्टोरल शोधकार्य किया।

कृतियाँ : ग्राम नियोजन, भारत में स्वच्छता अभियान : कार्यनीति एवं क्रियान्वयन, विकेंद्रीकृत योजना एवं विकास (अंग्रेजी), भारतीय कृषि में भूमि उत्पादकता एवं बेरोजगार (अंग्रेजी), ग्रामीण क्षेत्र में पूँजी व रोजगार सृजन (अंग्रेजी), पंचायतों के स्तर पर आवश्यकताओं व साधनों का अंतर (अंग्रेजी)।

पुरस्कार : इनकी पुस्तक 'ग्राम नियोजन' को इंदिरा गाँधी राजभाषा पुरस्कार।

संपर्क : मोबाइल : 9958337445

ई-मेल : mpal1661@gmail.com

महात्मा गांधी ने अपने जीवन में अनेक विचार दिए जिनकी चर्चा होती रहती है और उन पर शोध भी हुए हैं। इन्हीं विचारों में एक महत्वपूर्ण विचार उनका था ग्राम स्वराज अर्थात गाँव की सरकार। उनके विचार को ध्यान में रखकर केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारों ने पंचायती राज के माध्यम से लोगों की भागेदारी सुनिश्चित करने के नजरिये से, पारदर्शिता व जवाबदेही सुनिश्चित करने के माध्यम से अनेक प्रयास किए। विभिन्न समितियाँ समय-समय पर गठित की गईं। उनकी सिफारिशों को ध्यान में रखकर पंचायतों को मजबूत किया गया ताकि 'गाँव में गाँव की सरकार' विचार को अमल में लाया जा सके। इसी कड़ी में 73वें संविधान संशोधन ने लगभग 25 वर्ष पहले जन्म लिया, जिसके द्वारा पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देकर तथा उन्हें अधिक सशक्त कर नया जीवन देने का प्रयास किया था। यह अधिनियम गाँवों में पंचायतों के माध्यम से ग्राम स्वराज स्थापित करने में एक प्रयास था।

इस लेख में महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज विचार के विभिन्न पहलुओं को चिह्नित करके तथा उनको ध्यान में रखकर वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करके यह बताने का प्रयास किया गया है कि क्या वास्तव में सबमें ग्राम स्वराज है, और नहीं है तो उसे कैसे जमीन पर उतारा जा सकता है।

1. महात्मा गांधी का ग्राम स्वराज विचार

महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज की कल्पना मात्र पुरानी पंचायती राज व्यवस्था को पुनः जीवित करने की नहीं थी। उनका यह विचार आधुनिक जगत को ध्यान में रखकर एवं ग्राम

समाज के सभी घटकों को ध्यान में रखकर एक रचनात्मक प्रयास था। ग्राम स्वराज का विचार पूर्ण रूप से राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक लाभ था। यह विचार राज्य को समाप्त करने के पक्ष में नहीं, पर संपूर्ण विकेंद्रीकरण का पक्षधर था। संपूर्ण विकेंद्रीकरण का अर्थ है कि गाँव में सरकार या ग्राम सरकार। गांधी का विकेंद्रीकरण का विचार संपूर्ण राजनैतिक सत्ता को हस्तांतरण करने से था। इस तरह की सरकार में न केवल प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी होगी, बल्कि उनका शासन-प्रणाली में सीधा हाथ होगा। उनकी ग्राम स्वराज की कल्पना एक सच्चा और सशक्त लोकतंत्र था।

2. गांधी के ग्राम स्वराज के मुख्य घटक

आइए संक्षेप में देखते हैं कि उनके स्वराज के मुख्य रूप से क्या-क्या घटक थे।

2.1 गाँव की सरकार में पाँच व्यक्तियों की पंचायत होगी, जिनको वार्षिक आधार पर वयस्क नर व नारी द्वारा चुना जाएगा। इन सदस्यों की न्यूनतम योग्यता भी होगी। ग्राम सरकार के पास जरूरी शक्तियाँ व अधिकार होंगे। ग्राम स्वराज के तहत सरकार के तीनों कार्य अर्थात विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका उनके अधिकार क्षेत्र में होंगे। व्यक्तिगत स्वतंत्रता होगी और प्रत्येक व्यक्ति लोकतंत्र का भागीदार होगा। गांधीजी ने ये विचार लगभग 80 वर्ष पूर्व व्यक्त किए थे, जो अब भी उतने ही तर्कसंगत हैं।

2.2 ग्राम अपने स्तर पर पूर्ण रूप से गणतंत्र और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करेगा। हाँ, कुछ चीजों के लिए जो जरूरी है, उनके संदर्भ में दूसरे गाँवों पर आधारित हो सकता है। गाँव में लगभग 1000 की आबादी होनी चाहिए।

2.3 प्रत्येक गाँव पर्याप्त अन्न, कपास आदि उगाएँ। गाँवों में मनोरंजन एवं खेल के मैदान सभी बड़ों एवं बच्चों के लिए हों। गाँव में थिएटर हॉल, स्कूल एवं सामुदायिक हॉल भी हो। पानी की पर्याप्त सुविधा हो।

2.4 जहाँ तक संभव हो प्रत्येक गतिविधि सहकारिता के आधार पर होनी चाहिए।

2.5 जाति व्यवस्था एवं अछूत प्रथा का चलन नहीं होना चाहिए।

2.6 ग्रामीणों को अपनी समस्या के समाधान के लिए अहिंसा, सत्याग्रह एवं असहयोग का सहारा लेना चाहिए।

2.7 गाँव के चौकीदार की जरूरी सर्विस होनी चाहिए।

3. ग्राम स्वराज का अमलीकरण

जैसा कि पहले भी अंकित किया गया है कि गांधी के विचार को ध्यान में रखकर सरकारों ने प्रयास तो किए, लेकिन अधूरे मन से। आइए देखते है कि पंचायतों की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करके देखें कि ये संस्थाएँ ग्राम स्वराज के विचार के कितने नजदीक हैं। यहाँ पर गांधी के विचार का अमलीकरण पंचायतों के उपलब्ध अधिकार एवं शक्तियाँ और पंचायतों में लोगों की भागीदारी के आधार पर किया है।

3.1 महात्मा गांधी ने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि गाँव स्वराज ग्राम सरकार है अर्थात उसे विधायिका, न्यायपालिका एवं कार्यपालिका तीनों अधिकार प्राप्त हों। वह अपने स्तर पर सरकार हो जैसा कि राज्य एवं केंद्र स्तर पर सरकारें हैं। गांधीजी ने यह विचार 26 जुलाई, 1942 को 'हरिजन' पत्रिका में व्यक्त किया था। लेकिन यदि हम संविधान सभा की बहस को देखें तो पंचायतों को सशक्त करने की बात तो दूर की रही, उन्हें संविधान में रखा जाए या नहीं रखा जाए, इसी पर लंबी बहस हुई थी। उस बहस के ज्यादा गहराई में यहाँ जाने की जरूरत नहीं है। सिर्फ यह कहना चाहूँगा कि शायद गांधीजी के प्रभाव ही राज्य के नीति-निदेशक तथ्यों का हिस्सा बन सकें।

संविधान में दर्ज होने के बाद कोई खास उत्साह न तो सरकारों ने और न जनता ने दर्शाया। पंचायतें तो चलन में आईं, लेकिन वे सरकार नहीं बन सकीं। उसके दो मुख्य कारण थे जो कि अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट ने 1978 में व्यक्त किए थे। प्रथम, राजनैतिक नेता नहीं चाहते कि पंचायतें सशक्त हों, क्योंकि उनको यह नागवार है कि राज्य स्तर से नीचे एक सत्ता का केंद्र उभर कर आए। दूसरे, नौकरशाही। क्योंकि नौकरशाही अपनी तरक्की के लिए अपने उच्च अधिकारियों के अंतर्गत कार्य करना चाहते थे ताकि उनको अच्छी ए. सी.आर. मिले और वे आगे बढ़ते चले जाएँ। वे नहीं चाहते थे कि पंचायत नेताओं के नियंत्रण में कार्य करें। यह स्थिति 1978 की थी, जो अब भी ऐसी ही है। 73वाँ संविधान संशोधन 1993 में लागू हुआ। इस संशोधन में पंचायतों को सशक्त करने की बात की गई है। इस संविधान की धारा '243 जी' कहती है कि पंचायतों को राज्य विधानमंडल इतनी शक्तियाँ एवं अधिकार प्रदान करें ताकि ये संस्थाएँ अपने स्तर पर ग्राम सरकार बनें एवं आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाएँ बनाते समय, अनुसूची बनाते समय 11वीं अनुसूची में दर्ज 29 विषय भी शामिल हों। इन 29 विषयों में कृषि से लेकर सार्वजनिक परिशक्तियों का रख-रखाव भी शामिल है। यह सूची अनुबंध-1 में दी गई है। यहाँ अधिनियम 'सेल्फ गवर्नमेंट' का दर्जा पंचायतों को दे रहा है। इसका अर्थ हुआ कि पंचायतों को विधायी, न्यायिक एवं कार्यपालिका संबंधी सभी कार्य दिए जाने चाहिए थे। अनुसूची-11 में जो विषय दिए गए, उनमें वे सभी बातें हैं जो महात्मा गांधी ने अपने ग्राम स्वराज के विचार में रखी हैं। आश्चर्य की बात है कि सभी राजनैतिक पार्टियाँ गांधी का नाम लेते नहीं थकतीं, लेकिन उनके विचारों को अमल में लाने से कतराती हैं। आइए, इस पर टिप्पणी करते हैं।

भारत सकार के पंचायती राज मंत्रालय की 2015-16 की रिपोर्ट के अनुसार सत्ता का हस्तांतरण वांछित कार्यों, संसाधनों एवं कार्मिकों के माध्यम से 100 प्रतिशत होना था, वह किसी भी राज्य में नहीं हुआ है। सात राज्य केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, तेलंगाना, सिक्किम एवं पश्चिम बंगाल हैं, जिनमें 50 प्रतिशत से अधिक हुआ है। राज्यों के अतिरिक्त उपरोक्त राज्यों में 50 प्रतिशत से भी कम हुआ है। ऐसी स्थिति में 30 लाख से अधिक पंचायत प्रतिनिधि व 2.54 लाख के लगभग पंचायतें अपना सिर पीटने के अलावा क्या करेंगी। वास्तव में संविधान संशोधन ने पंचायती राज का ढाँचा तो खड़ा कर दिया, लेकिन उसमें मांस एवं खून का प्रबंध नहीं किया। यह सब ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि जैसे मृत महिला को गहने पहना रखे हों। और तो और सभी ग्राम पंचायतों के पास अपनी बिल्डिंग नहीं हैं। उत्तर प्रदेश में लगभग 33 प्रतिशत ग्राम पंचायतों के पास अपनी बिल्डिंग नहीं है। अन्य राज्यों में भी ग्राम पंचायतें कार्यालय रहित हैं। ऐसी स्थिति में पंचायती राज या तो ग्राम प्रधान की अलमारी में हैं या ग्राम सचिव के थैले में। सरकारों ने पंचायतों को अधिकार व शक्तियाँ देने के नाम पर ठेंगा दिखा दिया है। गांधी का विचार तो मात्र किताबों में या नेताओं के भाषणों तक ही सीमित रह गया है।

3.2 ग्रामीणों की भागीदारी के संबंध में कहना चाहूँगा कि गांधीजी सभी ग्रामीणों की भागीदारी ग्राम स्वराज जो पंचायतों के माध्यम से स्थापित होना था, चाहते थे। लेकिन यह भी ग्राम स्वराज की बहुत ही कमजोर कड़ी है। देश के अंदर पंचायतों में लगभग आठ लाख से अधिक अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति प्रतिनिधि पंचायतों में अध्यक्ष एवं सदस्यों के रूप में पदासीन हैं। 11 लाख से अधिक महिलाएँ, जो विभिन्न पदों पर रहकर पंचायतों को सुशोधित कर रही हैं। लेकिन इन वर्गों की भागीदारी नहीं के बराबर है। उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों के दौरे लेखक ने किए और पाया कि ग्राम पंचायतों के सदस्यों को बैठक का कोई नोटिस एजेंडा के साथ नहीं जाता। बिना नियम-कानून के पंचायतों की कार्यवाही हो रही है। ग्राम पंचायतों की बैठक उन सदस्यों के द्वारा होती है या पंचायत के वे सदस्य उपस्थित होते हैं जो ग्राम प्रधान/सरपंच के करीब होते है। पंचायतों में कितना-कितना पैसा किस-किस स्कीम के तहत आ रहा है, उसका विवरण या तो गाँवों में दीवार पर या बोर्ड पर होना चाहिए। लेकिन बोर्ड या दीवारों पर विवरण कहीं नजर नहीं आता है। भूमि प्रबंधन समिति जो गाँव की जमीन तालाबों आदि को देती है, कहीं गठित ही नहीं होती, प्रधान एवं पटवारी मनमानी करके लोगों को आपस में जमीन के झगड़ों में फँसाकर भिड़ाते रहते हैं और पैसा कमाते रहते हैं। यह अनुभव लेखक को ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने के दौरान सामने आए हैं।

ऐसा लगता है कि पंचायतें सरपंच/प्रधान एवं कुछ सरकारी कर्मियों/अधिकारियों की संस्थाएँ बनकर रह गई हैं। गाँवों के लोगों को पता है कि जो हो रहा है, वह सही नहीं है फिर भी आम जनता गाँवों के वर्चस्व वर्ग के डर के मारे बोलते नहीं और न शिकायत करते हैं। शिकायत यदि करते भी हैं, तो अन्य परेशानी उन परिवारों को उठानी पड़ती हैं। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले की तीन ग्राम पंचायतों का अध्ययन सिद्धार्थ मुखर्जी ने 2018 में किया था। इस अध्ययन में

"पंचायतें सरपंच/प्रधान एवं कुछ सरकारी कर्मियों/अधिकारियों की संस्थाएँ बनकर रह गई हैं। गाँवों के लोगों को पता है कि जो हो रहा है, वह सही नहीं है फिर भी आम जनता गाँवों के वर्चस्व वर्ग के डर के मारे बोलते नहीं और न शिकायत करते हैं। शिकायत यदि करते भी हैं, तो अन्य परेशानी उन परिवारों को उठानी पड़ती हैं।"

तीनों पंचायतों के प्रधान अनुसूचित जाति से हैं। यह अध्ययन बताता है कि पंचायत चुनाव 'बिजनेस' है। यहाँ पर ग्रामीण समाज के समृद्ध लोगों द्वारा 'नाम के प्रतिनिधियों' (Proxy Candidates) के लिए औसतन पाँच लाख से छह लाख खर्चा चुनाव के लिए किया गया। मतदाताओं को 'कैश' एवं 'कोइंड' में प्रलोभन दिया गया है। अनुसूचित जाति के प्रधान नाम मात्र के हैं, उनकी सत्ता औरों के हाथ में है। यह कैसा स्वराज हुआ। प्रधान तभी अपना काम निकाल सकता है जब वे अधिकारियों को कमीशन देते हैं। इस अध्ययन के दौरान एक पूर्व प्रधान ने बताया कि प्राप्त 'फंड' का लगभग 75 प्रतिशत अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कमीशन में चला जाता है और 25 प्रतिशत विकास के कार्यों में लगता है। अगर प्रधान ऐसा नहीं करेंगे तो उनका कोई भी कार्य नहीं होगा। उपरोक्त से स्पष्ट है कि गांधी का स्वराज कहीं दूर-दूर तक भी नजर नहीं आता।

3.3 स्थानीय स्तर पर न्याय की प्रक्रिया के लिए न्याय पंचायतों का प्रावधान है। लेकिन यह भी उचित प्रकार से कार्य नहीं कर रही है। इनके पास न शक्तियाँ है और न कार्य करने के लिए कर्मी हैं। उत्तर प्रदेश में तो न्याय पंचायतों को बहाल एवं सशक्त करने के स्थान पर उन्हें समाप्त ही कर दिया। बिहार में ग्राम कचहरी वहाँ की सरकार द्वारा अच्छा प्रयास है, लेकिन वे भी उचित प्रकार से कार्य नहीं कर रहीं, क्योंकि उनके पास उचित संरचात्मक सुविधा एवं कर्मी नहीं हैं।

4. क्या किया जाए

उपरोक्त से स्पष्ट है पंचायतें केवल नाम मात्र की हैं। उनके लिए यह कहावत चरितार्थ होती है कि 'घर बार सब तुम्हारा, कोठी-कुठले के हाथ न लगाना'। अर्थात राजनेता कहते हैं पंचायतों को जनता का राज, लेकिन जब पंचायतें अपने अधिकारों व शक्तियों की बात करती हैं तो उन्हें अँगूठा दिखा दिया जाता है। पंचायतें सही मायनों में ग्राम सरकार के रूप में उभर कर आए, उसके लिए निम्न उपाय सुझाए जा सकते हैं।

1. ग्रामीण एवं पंचायत सदस्यों को उनके अधिकारों के बारे में जागरूक करने के जरूरत है। यह कार्य नागरिक समाज को करने की जरूरत है। इससे विकेंद्रीकरण के लिए जनता में माँग बढ़ेगी। ग्रामीण व्यवस्था से सवाल पूछना शुरू करेंगे, सवाल करना बहुत जरूरी है।
2. सरकारी स्तर पर मुख्यरूप से ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न पद खाली पड़े हैं। उसमें विकेंद्रीकरण का पूर्ति पक्ष कमजोर है। इन सभी खाली पदों को एकदम भरने की जरूरत है। कांग्रेस के घोषणा पत्र में इन ग्रामीण क्षेत्र में खाली पदों को भरने का वादा किया गया है, जो पंचायतों को सशक्त करने में अच्छा कदम साबित होगा।
3. संविधान में संशोधन करके पंचायतों के लिए अलग से एक स्थानीय अनुसूची संविधान में दर्ज करने की जरूरत है। वर्तमान में संविधान में 11वीं अनुसूची तो है, लेकिन उसमें विषय परिभाषित नहीं हैं। पंचायतों के कार्य उनकी क्षमता के अनुसार परिभाषित करने की जरूरत है तभी जाकर वित्त के बारे में एवं कर्मियों के बारे में प्रयास हो सकते हैं। जब कार्य ही उचित प्रकार से परिभाषित नही होंगे, तो संसाधन एवं कर्मियों को कैसे हस्तांतरित करें या उनके लिए क्या प्रावधान करें।
4. पंचायतें स्वयं भी वित्तीय संसाधन जुटाएँ। केवल प्रतिनिधित्व ही हो, यह नहीं चलने वाला है। अगर पंचायतों में पारदर्शिता एवं जवाबदेही लानी है तो पंचायतों को स्वयं संसाधन भी जुटाने होंगे। पंचायतों की अनेक क्षमताएँ हैं, लेकिन वे उनका दोहन नहीं कर रही हैं। इसे अमल में लाने की जरूरत है।

विदेश में महात्मा गांधी की लोकप्रियता

–विजय कुमार

"आने वाली पीढ़ियाँ शायद ही इस बात का यकीन कर पाएँ कि कभी धरती पर गांधी जैसा कोई शख्स पैदा हुआ था।" राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की मृत्यु पर अल्बर्ट आइंस्टीन द्वारा कहे गए इन शब्दों से इतर आज दुनिया के कई देश बापू के सम्मान में निरंतर कुछ विशेष कर रहे हैं। वर्तमान में कई ऐसे देश हैं जहाँ उनके नाम से सड़कों का नामकरण किया गया, संग्रहालय स्थापित किए गए व डाक टिकट जारी किए गए। यही नहीं पूरी दुनिया में अपना प्रभुत्व स्थापित करने वाले अमेरिका जैसे देश की संसद में महात्मा गांधी को सर्वोच्च नागरिक सम्मान से नवाजे जाने की माँग उठी है। वहाँ की संसद में उन्हें मरणोपरांत प्रतिष्ठित सर्वोच्च असैन्य सम्मान 'कांग्रेसनल गोल्ड मेडल' से सम्मानित करने के लिए प्रतिनिधि सभा में प्रस्ताव पेश किया गया है।

इसके अलावा भारत और नाइजर ने, नियामि, नाइजर में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन केंद्र (एमजीआईसीसी) की स्थापना के लिए अपनी साझेदारी की घोषणा की है। उनके सम्मान में एक कदम और आगे बढ़ते हुए ह्यूस्टन, टेक्सास, संयुक्त राज्य अमेरिका में एक प्रजातीय विदेशी अंतःक्षेत्र में एक महात्मा गांधी डिस्ट्रिक्ट (जिसे लिटिल इंडिया या हिलक्रॉफ्ट के नाम से जाना जाता है) स्थापित किया गया है। इसमें मुख्य रूप से भारतीय और पाकिस्तानी रेस्तराँ हैं।

सनद रहे कि ईटरनल गांधी संग्रहालय 2005 में नई दिल्ली में स्थापित किया गया। यह दुनिया के पहले डिजीटल मल्टीमीडिया संग्रहालयों में से एक है। ह्यूस्टन, संयुक्त राज्य अमेरिका में पहला और एकमात्र शहर होगा, जो इसके स्थायी प्रदर्शन के रूप में मेजबानी करेगा। ह्यूस्टन संग्रहालय विशेष रूप से बच्चों के लिए एक अभूतपूर्व शैक्षिक संसाधन होगा, और गांधीवादी मूल्यों को विशेष तरीके से पेश करेगा।

बापू पर विदेशों में जारी डाक टिकट

सत्य और अहिंसा को ढाल बनाकर अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर करने वाले बापू को सम्मानित करते हुए भारत के अलावा दुनिया के लगभग 150 देशों ने 800 से अधिक डाक टिकट जारी किए हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि डाक टिकट के संसार में सबसे ज्यादा दिखने वाला यदि कोई भारतीय है तो वे बापू ही हैं। उल्लेखनीय है कि बापू पर डाक टिकट जारी करने के मामले में अमेरिका शीर्ष पर है। अमेरिका ने 26 जनवरी, 1961 को उन पर डाक टिकट जारी किए थे। ये टिकट 'चैंपियंस ऑफ लिबर्टी' सीरीज

के तहत जारी किए थे। तत्पश्चात वर्ष 1969 में गांधीजी की जन्मशताब्दी के अवसर पर ब्रिटेन समेत लगभग 40 देशों ने उन पर डाक टिकट जारी किए। इसके अलावा गांधीजी की 30वीं पुण्यतिथि के अवसर पर वर्ष 1978 में माली ने भी डाक टिकट जारी किया। इसके 10 वर्ष बाद 1988 में श्रीलंका ने भी गांधीजी पर डाक टिकट

जारी किया। कई देशों ने उनकी 50वीं पुण्यतिथि पर भी डाक टिकट जारी किए। 20 जुलाई, 1997 को शिकागो सरकार ने एक पोस्टमार्क भी जारी किया। कुल मिलाकर गांधीजी के नाम पर अमेरिका में तीसरी बार पोस्टमार्क जारी किया गया। वर्ष 1972 में ब्राजील और 1978, 1986 में जर्मनी ने भी गांधीजी पर डाक टिकट जारी किए थे।

भारत की स्वतंत्रता की 50वीं वर्षगाँठ के अवसर पर वर्ष 1997 में तुर्कमेनिस्तान, वेनेजुएला, भूटान और क्यूबा ने भारत को सम्मानित करने के लिए गांधीजी पर डाक टिकट जारी किए। तुर्कमेनिस्तान द्वारा जारी टिकट में बापू को इंदिरा गांधी के साथ दिखाया गया है। सनद रहे कि भारत को गुलाम बनाने वाले ब्रिटेन ने जब पहली बार किसी महापुरुष पर डाक टिकट जारी किया तो वह महात्मा गांधी ही थे। यह टिकट उनके निधन के 21 साल बाद उनके नाम से जारी किया। इससे पहले ब्रिटेन में डाक टिकट पर केवल राजा या रानी के ही चित्र छपते थे। वर्ष 1972 में कोलकाता में गांधीजी पर जारी किए गए डाक टिकटों की एक प्रदर्शनी में ब्रिटेन द्वारा जारी टिकट को सबसे बेहतरीन टिकट का पुरस्कार मिला था। ध्यातव्य है कि 30 जनवरी अर्थात शहीद दिवस को ब्रिटेन 'गांधी स्मृति दिवस' के रूप में मनाता है।

दक्षिण अमेरिका का 10 टिकटों का सेट है, जिसमें नेहरू, गांधी और पटेल शामिल हैं। उत्तरी अमेरिका द्वारा जारी डाक टिकट में गांधी को मृत्युशय्या पर लेटे दिखाया गया है। स्कॉटलैंड द्वीप के एक छोटे से द्वीप सांडा में जारी थ्री डी डाक टिकट में गांधी को बच्चों को दुलारते दर्शाया गया है। डबरा आइसलैंड ने गांधीजी पर गोल्डन डाक टिकट जारी किया। वहीं नाइजीरिया ने आइंस्टीन के साथ गांधीजी का डाक टिकट जारी किया। तजाकिस्तान के डाक टिकट में गांधी को साइकिल चलाते दिखाया गया है और जांबिया के 'लॉ स्टूडेंट इन लंदन' इस अनूठे संग्रह के अंग हैं।

विदेश में बापू की स्थापित मूर्तियाँ

महात्मा गांधी ऐसे एकमात्र महापुरुष हैं, जिनकी भारत सहित 70 से अधिक देशों में मूर्तियाँ लगी हुई हैं। यहाँ तक कि दुनिया की

पार्लियामेंट स्क्वायर लंदन में स्थापित महात्मा गांधी की प्रतिमा

महाशक्ति यानी अमेरिका में उनकी 30 से भी ज्यादा मूर्तियाँ हैं। रूस और कम्युनिस्ट देश चीन में स्थापित मूर्तियों से उनकी लोकप्रियता और व्यक्तित्व का अंदाजा लगाया जा सकता है। लेकिन यह दुर्भाग्य की बात है कि अविभाजित भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले बापू की पड़ोसी मुल्क और चिर-प्रतिद्वंद्वी पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद स्थित 'पाकिस्तान मॉन्युमेंट म्यूजियम' में मोहम्मद अली जिन्ना के साथ एकमात्र मूर्ति स्थापित है। हालाँकि कराची कैंट क्षेत्र में एक पृथक मूर्ति की स्थापना की गई थी, लेकिन 1950 में इसे हटा दिया गया। महात्मा गांधी की ऐतिहासिक कांस्य प्रतिमा 14 मार्च, 2015 को पार्लियामेंट स्क्वायर, लंदन, इंग्लैंड में स्थापित की गई थी। ब्रिटेन में गांधीजी की प्रतिमा को बड़े सम्मानित दृष्टि से देखा जा रहा है।

जोहांसबर्ग में महात्मा गांधी की प्रतिमा

विदेश में गांधीजी को समर्पित स्मारक

लेक श्राइन, कैलिफोर्निया, संयुक्त राज्य अमेरिका गांधी विश्व शांति स्मारक है। इसमें एक हजार साल पुरानी चीनी कब्र है, जिसके समीप गांधीजी की रज को एक पीतल-एल्युमिनियम के संदूक में रखा गया है। इस स्मारक का निर्माण 1950 में हुआ था। 30 जनवरी, 1976 को गांधी मेमोरियल सेंटर की स्थापना बेथेस्डा, मैरीलैंड (यूएसए) में की गई, जो महात्मा गांधी के जीवन को दर्शाता हुआ भारत की सांस्कृतिक विरासत को संदर्भित करता है। इसके अलावा टेविस्टॉक स्क्वायर, लंदन, इंग्लैंड में स्थापित मूर्ति को मूर्तिकार फ्रेडा ब्रिलेंट द्वारा बनाया गया था और 1968 में पूर्व ब्रिटिश प्रधानमंत्री हेरोल्ड विल्सन द्वारा इसका अनावरण किया गया था। वर्ष 1984 में इंदिरा गांधी की

कोपेनहेगन, डेनमार्क यात्रा के दौरान उनके द्वारा एक प्रतिमा डेनमार्क सरकार को भेंट दी गई थी, जिसका स्मारक कोपेनहेगेन में स्थित है। गांधीजी का एक स्मारक चर्च स्ट्रीट, पीटरमैरिट्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में स्थापित है, क्योंकि यहाँ वर्ष 1893 में गांधी को एक श्वेत व्यक्ति द्वारा ट्रेन से धक्का देते हुए देखा था। भारत की स्वतंत्रता के 15वें वर्ष में, भारत सरकार ने अर्जेंटीना को राम वनजी सुतार द्वारा बनाई गई एक गांधी प्रतिमा भेंट की, जिसका स्मारक प्लाजा सिसिलिया, ब्यूनस आयर्स, अर्जेंटीना में बना हुआ है। ग्लीबे पार्क, कैनबरा, ऑस्ट्रेलिया में स्थापित स्मारक उनके मार्गदर्शक सिद्धांतों की पहचान कराता है— “सिद्धांतों के बिना कोई राजनीति नहीं, नैतिकता के बिना कोई व्यापार नहीं और मानवता के बिना कोई विज्ञान नहीं।” वहीं 1948 में, महात्मा गांधी की रज का कुछ अंश जिंगा, युगांडा में नील नदी में प्रवाहित किया गया था। आज वह मेमोरियल गार्डन के रूप में परिणत हो चुका है। कलाकार वर्नर होर्वाथ ने शांति और अहिंसा के प्रति अपने योगदान को दर्शाते हुए गांधीजी की एक ऑयल पेंटिंग बनाई थी जो गार्डन ऑफ पीस, वियना, ऑस्ट्रिया में लगाई गई है। भारत और स्विट्जरलैंड के बीच हस्ताक्षरित 1948 की मैत्री संधि के तहत भारत सरकार ने उन्हें संधि की 60वीं वर्षगाँठ पर प्रतिमा भेंट की, जिसका स्मारक एरियाना पार्क, जिनेवा, स्विट्जरलैंड में स्थापित है। प्रतिमा में एक शिलालेख है जिस पर फ्रेंच में लिखा है, ‘मा वी ईस्ट मोन मेसेज (Ma vie est mon message)’, जिसका अर्थ है ‘मेरा जीवन ही मेरा संदेश है’।

महात्मा गांधी के नाम पर विदेश में सड़कें

विश्व के अधिकतर देश किसी भी महापुरुष को सम्मानित करने के लिए उनके नाम से सड़कों और चौराहों का नामकरण करते हैं। महान व्यक्तित्व के धनी महात्मा गांधी की प्रसिद्धि का आकलन इसी बात से किया जा सकता है कि वर्ष 2008 में गांधी स्मारक परिषद, जिसका मुख्यालय संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित है, ने महात्मा गांधी के नाम से सड़कों का नामकरण करने के लिए 39 देशों में 185 शहरों के महापौरों से संपर्क किया था। नीदरलैंड में भी महात्मा गांधी के नाम

पर करीब 30 शहरों में मार्गों और चौराहों का नामकरण किया गया है। दक्षिण अफ्रीका, फ्रांस और ईरान जैसे देशों में भी कई महात्मा गांधी मार्ग हैं। इसके अलावा बेल्जियम, जमैका, हंगरी, इंडोनेशिया, इटली, जॉर्डन, लेबनान, मेक्सिको, मंगोलिया, फिलीपींस, सर्बिया, स्पेन, श्रीलंका, यूनाइटेड किंगडम और कनाडा में एक; फ्रांस, ईरान, दक्षिण अफ्रीका और तुर्की में दो; जर्मनी और त्रिनिदाद एवं टुबैगो में तीन; मॉरीशस में छह तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में चार मार्गों का महात्मा गांधी के नाम पर नामकरण किया गया है। भारत के 67वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर कनाडा के विनीपेग शहर में एक मार्ग का नामकरण महात्मा गांधी के नाम पर किया गया है। कनाडा में मानवाधिकारों के कनाडाई संग्रहालय तक जाने वाले मार्ग को अब ‘ऑनररी महात्मा गांधी वे’ के नाम से जाना जाएगा।

(‘पुस्तक संस्कृति’ के संपादकीय विभाग से संबद्ध)

पुस्तक समीक्षा

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखक : **वीरेन्द्र कुमार भारती**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 202

मूल्य : रु. 215/-

कृषि उन्नति का मार्ग–कृषि ज्ञान

डॉ. वीरेन्द्र कुमार भारती द्वारा लिखित पुस्तक–'कृषि उन्नति का मार्ग–कृषि ज्ञान' राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा लोकोपयोगी सामाजिक विज्ञान की पुस्तकों की श्रेणी में प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक आदिम काल से आज तक के भारतीय कृषि ज्ञान की यात्रा का वृत्तांत है। साथ ही, यह नवीनतम कृषि ज्ञान-विज्ञान से भी पाठकों को अवगत कराती है।

आहार मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता है। कृषि इस आवश्यकता की पूर्ति करती है। हमारे देश के साहित्य में कृषि की चर्चा और कृषि साहित्य के सृजन की ऐतिहासिक परंपरा रही है। लेखक ने प्राचीन और मध्यकालीन भारत के कृषि साहित्य से लेकर आधुनिक युग की डिजीटल कृषि पत्रकारिता तक के सफर का शोधपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है।

कृषि विज्ञान निरंतर प्रगतिशील है। स्वतंत्र भारत में व्यापक कृषि सुधार और विकास हुआ है। भारत में हरित क्रांति के जनक कहलाने वाले कृषि वैज्ञानिक एम. एस. स्वामीनाथन के अनुसार, "कृषि में बदलाव किसी चमत्कार से नहीं हुआ, देश में कृषि की प्रगति से जुड़े हुए सभी लोगों की कड़ी मेहनत और सुनियोजित कार्य ने भारत को यह महान उपलब्धि दिलाई।" लेखक के अनुसार, भारतीय कृषि अब हरित क्रांति से इंद्रधनुषी क्रांति की ओर अग्रसर है, जिसका उद्देश्य भारत को विश्व में कृषि शक्ति के रूप में स्थापित करना है।

हर इनसान की तरह किसान भी उस ज्ञान के प्रति उत्सुक होता है, जो उसके काम को आसान बनाए। कृषि पत्रकारिता का उद्देश्य किसानों को कृषि से जुड़ी ऐसी ही नई-नई खोजों और अनुसंधानों से परिचित कराना होता है। कृषि पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रकाशन के साथ-साथ आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारण का भी महत्वपूर्ण योगदान है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के सभी केंद्रों से कृषि संबंधी कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं, जैसे–आकाशवाणी दिल्ली का 'कृषि जगत' कार्यक्रम। दूरदर्शन का 'कृषि दर्शन' कार्यक्रम 1967 से लगातार प्रसारित हो रहा है। 2015 में शुरू किया गया दूरदर्शन का किसान चैनल पूरी तरह किसानों के लिए समर्पित है। लेखक ने कृषि पत्रकारिता के विभिन्न माध्यमों की विस्तृत चर्चा की है।

डिजीटल टेक्नोलॉजी से आई संचार क्रांति ने कृषि के क्षेत्र में भी ई-ज्ञान का सूत्रपात किया है। मल्टीमीडिया ने कृषि पत्रकारिता को नया रूप दिया है। इसमें सबसे बड़ी भूमिका भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की है। सी.डी., डी.वी.डी., फिल्में, ऑनलाइन पत्रिकाएँ आदि आज कृषि ज्ञान के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। लेखक के अनुसार, मल्टीमीडिया का सर्वाधिक प्रभावी स्वरूप कृषि संस्थाओं की वेबसाइट्स हैं।

आज ग्रामीण क्षेत्रों में भी मोबाइल फोन खूब इस्तेमाल हो रहे हैं। पुस्तक के 'सोशल मीडिया द्वारा कृषि क्रांति' अध्याय में लेखक ने दिखाया है कि इंटरनेटयुक्त मोबाइल फोन किस तरह किसानों को मौसमी फसलों, मौसम, मिट्टी, उत्पाद के भंडारण, विपणन आदि के बारे में तत्काल उपयोगी जानकारियाँ दे रहा है। पुस्तक में खेती-बाड़ी को आसान बनाने में कुछ प्रभावी मोबाइल ऐप्स की जानकारी दी गई है, जैसे–किसान सुविधा, पूसा कृषि, एग्रीऐप आदि। अत्यधिक लोकप्रिय व्हाट्स-ऐप भी किसानों को आपस में जोड़ रहा है। सोशल मीडिया किसानों के सशक्तीकरण में सहायक है।

पुस्तक में कृषक स्त्रियों के सशक्तीकरण पर एक अलग अध्याय है। यह प्रशंसनीय है, क्योंकि आमतौर पर पुरुषों को ही किसान माना जाता है, जबकि कृषक परिवार में महिलाएँ भी कृषि के हर पहलू से जुड़ी होती हैं। खेती के विभिन्न स्तरों पर महिलाएँ सक्रिय योगदान देती हैं। इसके साथ ही उन पर परिवार के पोषण की भी जिम्मेदारी होती है।

किताब के अध्याय कृषि ज्ञान के इतिहास और वर्तमान के आधार पर विभक्त हैं। यह विभाजन किसानों की समस्या और उनके समाधान के आधार पर भी हो सकता था। इससे किसानों को अधिक लाभ होता। इस दृष्टि से पुस्तक का एक अध्याय-'टिकाऊ कृषि के लिए प्रभावशाली देसी तकनीकी ज्ञान' अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कृषि के परंपरागत देसी तकनीकी ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक के समन्वय से ही कृषि विकास के लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। देसी तकनीकें सदियों के अनुभव से विकसित हुई हैं, जिनकी मदद से भारतीय किसान प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना अस्तित्व कायम रख सके हैं। देसी तकनीक स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल होने के साथ-साथ सस्ती भी होती हैं। किसान इन पर अधिक यकीन करते हैं, जबकि आधुनिक

अनुसंधान पर आधारित तकनीक को अपनाने में उन्हें झिझक होती है। पुस्तक में देसी तकनीकी ज्ञान को बढ़ावा देने वाली संस्थाओं की चर्चा है। इसी अध्याय में वर्षा जल प्रबंध, मृदा एवं जल संरक्षण के लिए अपनाई जाने वाली कुछ लोकप्रिय देसी तकनीक के नाम भी दिए गए हैं।

पुस्तक सुसंपादित है। लेखक ने यथासंभव सरल भाषा-शैली का उपयोग किया है। किंतु यह अधिक तथ्यपरक है। इस कारण यह किताब किसानोपयोगी होने के बजाय अकादमिक महत्व की अधिक है। इस दृष्टि से यह हिंदी कृषि साहित्य की एक महत्वपूर्ण पुस्तक मानी जाएगी।

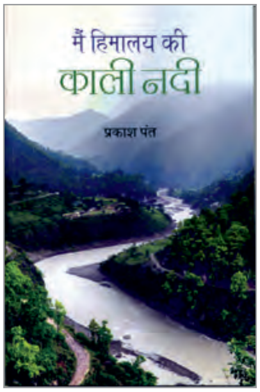

मैं हिमालय की काली नदी

समीक्षक : **दीपक मंजुल**

लेखक : **प्रकाश पंत**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 72

मूल्य : रु. 85/-

भारत और नेपाल की सीमा को बाँटने वाली काली नदी पहाड़ों से उतरते ही 'शारदा नदी' के नाम से जाने जानी लगती है। काली नदी यदि भौगोलिक रूप से भारत और नेपाल की सीमा बनाती है तो यह दोनों देशों को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में भी बाँधती है। दो देशों के बीच सीमा निर्धारण की लकीर बनी यह नदी सदियों से निर्बाध गति से यात्रालीन है। सदियों की अपनी यात्रा में इस नदी ने अपने तट पर अनेक युद्ध देखे हैं। इतिहास के अनेक युद्धों की यह साक्षी व द्रष्टा रही है। लेखक ने इसी नदी को पुस्तक की मुख्य पात्र बनाकर उस इतिहास की तह तक जाने की कोशिश की है, जिसकी वजह से भारत और नेपाल के संबंध आरोह और अवरोह के बीच झूलते रहे। दोनों देशों के मध्य ऐतिहासिक गलतफहमियों की वजह से आई तनावपूर्ण स्थिति, लेखक के शब्दों में, 'हममें से किसी के भी हित में नहीं रही, ऐसा नहीं होना चाहिए।' इस तनाव के साथ ही यह भी ऐतिहासिक सच्चाई रही है कि दोनों देशों की संस्कृतियाँ भी साझा रही हैं और दोनों देशों के मध्य रोटी-बेटी का रिश्ता रहा है। दोनों के सुख-दुख एक हैं, दोनों के रहन-सहन एक हैं, खान-पान एक हैं और रिश्ते-नाते भी एक ही हैं।

इसी पृष्ठभूमि में इस पुस्तक की रचना हुई है। काली नदी के पूरब में नेपाल और पश्चिम में भारत का उत्तराखंड है और उत्तर की ओर तिब्बत है। इस क्षेत्र में व्यापार कभी अपने चरम पर पहुँचा हुआ था। लोग वस्तु-विनिमय से अपनी जरूरतें पूरी किया करते थे। सन् 1768 में आधुनिक नेपाल के निर्माता श्री पाँच महाराजाधिकारी पृथ्वी नारायण साह ने मात्र 20 वर्ष की उम्र में राजगद्दी सँभाली थी और 52 वर्ष की उम्र तक यानी 32 वर्ष राज किया था। उससे पूर्व तक नेपाल छोटे-छोटे ठकुरी राजाओं में बँटा हुआ था। महाराज पृथ्वीनारायण साह ने नेपाल के समस्त राजवंशों का एकीकरण कर आधुनिक नेपाल की स्थापना की थी, जिससे नेपाल एक शक्तिशाली समृद्ध राष्ट्र के रूप में उभरकर सामने आया। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का कब्जा हो गया था। अंग्रेजों की नजर नेपाल पर थी। जिस प्रकार व्यापारिक संधि करके उन्होंने भारत की राजसत्ता को हथियाया था, उसी तरह नेपाल को भी वे कब्जाना चाहते थे। नेपाल के राजा रणबहादुर शाह ने कंपनी के गवर्नर जनरल लॉर्ड कार्नवालिस के साथ एक व्यापारिक संधि की थी। इसके बाद दोनों के मध्य एक और संधि हुई थी जो नेपाल व कंपनी सरकार के मध्य सीमा-निर्धारण की पहली संधि थी। दो दिसंबर, 1815 को महाराजा नेपाल तथा ईस्ट इंडिया कंपनी के मध्य सुगौली में बैठक हुई। सुगौली की इस प्रसिद्ध संधि के आधार पर भारत और नेपाल के बीच सीमा निर्धारण और चिरस्थायी शांति व मैत्री की संधि की गई, किंतु 1947 में स्वतंत्रता-उपरांत भी दोनों देशों की सीमायी स्थिति असमंजसपूर्ण रही जो दोनों देशों में यदा-कदा आपसी वैमनस्य की वजह बन जाती है।

नेपाली या गोरखालियों का प्रतापी राजा था पृथ्वी नारायण साह। वह सन् 1742 में अपने पिता की गद्दी पर बैठा तथा 1775 में मृत्युपर्यंत गद्दीनशीन रहा। छोटे-छोटे रजवाड़ों को जीतने के क्रम में पृथ्वी साह ने 1768 में काठमांडू को भी जीत लिया। फिर रानी इंद्रमणि और बहादुर शाह ने भी राज्य कब्जाने की यह नीति जारी रखी। फिर आगे गोरखों द्वारा कुमाऊँ तथा गढ़वाल विजय के भी किस्से चलते हैं। बीच में चीन का नेपाल और तिब्बत पर दखल और दाखिल होने का भी इतिहास आता है। अंग्रेजों की नेपाल में दखलअंदाजी लगातार चलती रही तथा जीत-हार के सिलसिले भी। सेनानायक औक्टरलोनी कंपनी के शूरवीर सेनानायक के रूप में उभरे। युद्धों के निरंतर सिलसिले में झूठ, धोखाधड़ी, बेईमानी, षड्यंत्र तथा और भी अनेक नैतिक-अनैतिक हथकंडे अपनाये गए और कभी जीत तो कभी हार के सिलसिले भी।

युद्धों के निरंतर सिलसिले में ईस्ट इंडिया कंपनी की फौज गोरखालियों पर अंततः भारी पड़े तथा कुमाऊँ समेत अनेक नेपाल अधिकृत क्षेत्रों को नेपाल के चंगुल से छुड़ा लिया। आज भारतवर्ष का यह वर्तमान स्वरूप, विशेष तौर पर उत्तराखंड के संदर्भ में, अंग्रेजों की आक्रामक नीति का ही परिणाम है। इसके साथ ही यह भी एक तथ्य है कि भारत और नेपाल के बीच आज जो सीमा विवाद है, वह उस समय के कंपनी और नेपाल सरकार के मध्य तात्कालिक और कच्चे-पक्के समझौतों की ही देन है जिन्हें तत्कालीन पराजित राजा

मजबूरीवश स्वीकार तो कर लेता था, किंतु दिल से नहीं, और अवसर मिलते ही क्षेत्रों को कब्जाने की पुनर्कोशिशें जारी रखते थे। इस पुस्तक में काली नदी 'मैं' की शैली में इस पूरे युद्ध कथानक का बयान करती है और निष्कर्ष देती है कि युद्ध समस्या का समाधान नहीं, बातचीत ही समाधान का एकमात्र और अंतिम रास्ता है।

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **धर्मेन्द्र पंत**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 420

मूल्य : रु. 440/-

क्रिकेट विज्ञान

बच्चों से लेकर वरिष्ठ नागरिकों तक को अपने मोहपाश में बाँधकर रोमांच की पराकाष्ठा तक पहुँचाने वाला क्रिकेट का खेल विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय है। भारत में भी क्रिकेट खेलों का पर्याय बन गया है। 1992 से खेल पत्रकारिता से जुड़े रहे धर्मेन्द्र पंत का बचपन से ही क्रिकेट से गहरा लगाव रहा है। उन्होंने 'क्रिकेट विज्ञान' में क्रिकेट से जुड़े हर पहलू की वैज्ञानिक तरीके से व्याख्या करने का प्रयास किया है।

अनेक इतिहासविदों का मानना है कि क्रिकेट खेल आज से 700-800 साल पहले खेले जाने वाले खेल 'क्रिग' का परिष्कृत रूप है। इंग्लैंड को इस खेल का जन्मदाता देश माना जाता है। फ्रांस में भी 'क्रिकेट' नामक खेल खेला जाता था जिसके बारे में कुछ इतिहासविदों का कहना है कि यही खेल बाद में क्रिकेट के नाम से जाना गया।

इंग्लैंड में जब क्रिकेट खूब प्रचलित होने लगा तो लंदन क्रिकेट क्लब ने 1744 में क्रिकेट के नियम बनाए जिससे पता चलता है कि तब एक ओवर चार गेंद का होता था और पिच 22 गज की। इसमें बकायदा बल्लेबाज, गेंदबाज, विकेटकीपर, अंपायर तक के लिए भी नियम निर्धारित किए गए थे। इन नियमों को 1774 में नया रूप दिया गया था। एमसीसी ने 1788 में नियमों को संशोधित किया था।

इंग्लैंड क्रिकेट का जन्मदाता है, लेकिन पहला टेस्ट मैच ऑस्ट्रेलिया में खेला गया था। 1877 में 15 से 19 मार्च के बीच 'मेलबर्न क्रिकेट ग्राउंड' पर खेले गए इस मैच में इंग्लैंड को ऑस्ट्रेलिया ने 45 रन से हराया था।

1910 में इंपीरियल क्रिकेट कॉन्फ्रेंस (आईसीसी) की स्थापना की गई थी जिसे आज 'अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट परिषद' के नाम से जाना जाता है। 1900 में छह गेंद के ओवर का प्रचलन शुरू हो गया था। सिक्स यानी छक्के को पहली मान्यता 1910 में मिली थी। इंग्लैंड में ही 2003 में क्रिकेट के तीसरे प्रारूप ट्वेंटी-20 की शुरुआत हुई जो आज क्रिकेट का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रारूप बन गया है। ट्वेंटी-20 का पहला विश्वकप 2007 में दक्षिण अफ्रीका में आयोजित किया गया था, जिसे भारत ने जीता था।

भारत में क्रिकेट की शुरुआत आज से लगभग 400 साल पहले तब हुई थी जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय सरजमीं पर कदम रखा था। माना जाता है कि भारत में पहली बार 1721 में ईस्ट इंडिया कंपनी के नाविकों ने बड़ौदा के निकट कैम्बे में क्रिकेट खेला था। भारत में क्रिकेट का पहला क्लब 1792 में कोलकाता में खोला गया था। पारसियों ने 1848 में एक क्रिकेट क्लब की स्थापना की थी। इस क्लब का नाम 'ओरियंटल क्रिकेट क्लब' था। इसके दो साल बाद जोरोस्ट्रियन क्लब की स्थापना हो गई, जो आज भी अस्तित्व में है।

सन 1947 में भारत आजाद हुआ। इसके बाद 1948 में ही भारतीय टीम ऑस्ट्रेलियाई दौरे पर गई थी, जिसमें ऑस्ट्रेलिया टीम की अगुवाई महानतम बल्लेबाज सर डॉन ब्रेडमैन कर रहे थे। 1928 में बीसीसीआई (The Board of Control for Cricket in India) की स्थापना की गई थी।

इस पुस्तक के अनुक्रम को देंखे तो इसमें चार खंड हैं। प्रत्येक खंड में अनेक शीर्षक हैं जिसके अंतर्गत लेखक ने वैज्ञानिक पद्धति से क्रिकेट के खेल की विवेचना की है।

खंड दो में 'भारत के प्रमुख बल्लेबाज' शीर्षक के अंतर्गत सुनील गावस्कर, सचिन तेंदुलकर, राहुल द्रविड, वीवीएस लक्ष्मण, वीरेंद्र सहवाग, सौरव गांगुली, गुंडप्पा विश्वनाथ, दिलीप वेंगसरकर, मोहम्मद अजहरुद्दीन, मोहिंदर अमरनाथ, गौतम गंभीर, पाली उमरीगर, विजय मांजरेकर, विजय हजारे, दिलीप सरदेसाई, वीनू मांकड, कपिल देव, रवि शास्त्री, चंदू बोर्डे, नवजोत सिंह सिद्धू, मंसूर अली खान पटौदी, अजीत वाडेकर, चेतन चौहान, कृष्णमाचारी श्रीकांत, युवराज सिंह, महेंद्र सिंह धोनी, चेतेश्वर पुजारा, विराट कोहली, मुरली विजय, अजिंक्य रहाणे एवं रोहित शर्मा के संक्षिप्त परिचय के साथ क्रिकेट खेल से जुड़ीं उनकी उपलब्धियों को दशार्या गया है। एक समीक्षक के स्तर पर लेखक ने उपर्युक्त बल्लेबाजों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है।

खंड चार में लेखक ने 'महिला क्रिकेट' शीर्षक के अंतर्गत इस तथ्य को उद्‌घाटित किया है कि महिला क्रिकेट 275 से भी अधिक वर्षों से अस्तित्व में है, मगर अफसोस इस बात का है कि आईसीसी का सान्निध्य मिलने के बावजूद आज भी महिला क्रिकेट संघर्ष कर रहा है। भारतीय महिला टीम ने पहला टेस्ट मैच 31 अक्तूबर से दो नवंबर, 1976 के बीच बेंगलुरु में वेस्टइंडीज के खिलाफ खेला था। इसी खंड में 'क्रिकेट के नियम' शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने समय-समय पर क्रिकेट के नियमों में आए बदलावों का भी जिक्र

किया है। एमसीसी ने क्रिकेट के 42 नियम बनाए हैं। जो लोग क्रिकेट की शब्दावाली से परिचित हैं, उन्हें क्रिकेट देखने में बहुत मजा आता है। यहीं 'क्रिकेट शब्दावली' का भी जिक्र है। जैसे कि ऑलआउट, एंकर, अपील, बैकफुट, क्लीन बोल्ड, ड्रॉ, डॉट बॉल, ड्रिंक्स आदि।

शीर्षक 'अंपायर यानी मैदान पर न्यायाधीश' के अंतर्गत लेखक ने इस तथ्य को दर्शाया है कि अंपायर को खिलाड़ियों, मीडिया, प्रसारकों, दर्शकों और खेल से जुड़े हुए अन्य लोगों की अपेक्षाओं पर खरा उतरना होता है। यह बड़ी चुनौती होती है, इसलिए अंपायर को बराबर चौकस रहना पड़ता है। शारीरिक फिटनेस बहुत जरूरी होती है। अंपायर को छह-सात घंटे धूप में खड़े रहना पड़ता है। अंपायर के लिए एकाग्रता का होना बहुत जरूरी है। आधुनिक प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) ने यदि अंपायरों का काम आसान किया है, तो उनके काम को अधिक चुनौतीपूर्ण भी बना दिया है, क्योंकि अब दर्शकों और खिलाड़ियों को उनकी गलती का तुरंत पता चल जाता है।

लेखक ने इस पुस्तक को तैयार करने में जिन पुस्तकों, पत्रिकाओं का सहारा लिया है, उन सबका जिक्र इस पुस्तक के अंतिम पृष्ठ पर किया है।

यदि खेल भावना से कोई खेल खेला जाए, जिसमें भागदौड़ की अहम भूमिका हो, तो खिलाड़ी शारीरिक-मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहता है। जहाँ तक क्रिकेट की बात है इसमें खिलाड़ियों को बहुत पैसे मिलते हैं यानी आज के दौर में क्रिकेट के खिलाड़ी अन्य खेलों के खिलाड़ियों के अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से बहुत संपन्न हैं।

समग्रता में मूल्यांकन किया जाए, तो यह पुस्तक क्रिकेट प्रेमियों के लिए संदर्भ ग्रंथ साबित होगी।

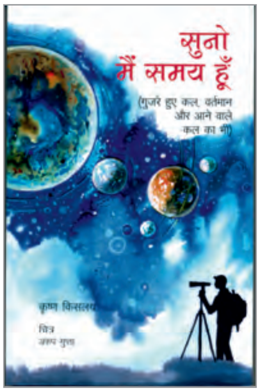

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **कृष्ण किसलय**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 171

मूल्य : रु. 105/-

सुनो मैं समय हूँ

विकास और विज्ञान के बीच चोली-दामन का संबंध है। एक के अभाव में दूसरे को देख पाना अत्यंत कठिन होता जाता है। 21वीं सदी में विज्ञान की महिमा अपरंपार है। 'सुनो मैं समय हूँ' पुस्तक में गुजरे हुए कल, आज, और आने वाले कल की कथा को सफलता के साथ रचा-बुना गया है। विज्ञान के जिन गंभीर-जटिल बिंदुओं को लेखक ने अत्यंत गहराई और व्यापक विद्वता के साथ पुस्तकाकार किया है, वह निश्चय ही सराहनीय है। विज्ञान प्रायः प्रमाण और तार्किकता के सहारे ही कार्य करता है। इस पुस्तक में ब्रह्मांड, जीवन, ज्ञान और अनुसंधान से जुड़े विविध बिंदुओं को बड़े ही रुचिपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करने का कार्य कृष्ण किसलय (जो इस पुस्तक के लेखक हैं) ने किया है। अध्ययन-विश्लेषण तथा पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक में दो खंड रखे गए हैं। पहला खंड है—ब्रह्मांड, दूसरा और अंतिम खंड है—जीवन। ज्ञान के विकास पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने यह स्थापना दी है कि ज्ञान का विकास भारत में हुआ है। "भारत को एक से लेकर ख़रब तक की संख्या की गिनती और इन अंकों को वर्णों में भी व्यक्त करने का ज्ञान वैदिक काल (यजुर्वेद) से रहा है।...भारत में शून्य का व्यापक प्रयोग ईसा से पाँच सदी पहले 'अष्टाध्यायी' के लेखक और व्याकरण-गणित के आचार्य महर्षि पाणिनि के समय हो रहा था। यह भारतीय अंक-ज्ञान का ही प्रभाव है कि उर्दू, अरबी, फारसी भाषाएँ दाएँ से बाएँ लिखी जाती हैं, मगर अंक उनमें भी बाएँ से दाएँ ही लिखे जाते हैं।..ईसा से चार सदी पहले चाणक्य के ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में अनेक खनिजों के दोहन-प्रसंस्करण की जानकारी है।" ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख ज्ञान के विकास में भारत की भूमिका को रेखांकित करता है। इस पुस्तक में हमारे स्वर्णिम अतीत के उल्लेख से कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ भी हमें मिलती हैं। 'विश्व उत्पत्ति का आरंभिक चिंतन ऋग्वेद में' लेख के द्वारा लेखक ने भारतीय मेधा का प्रमाण भी दिया है। "सृष्टि के पूर्व न भाव था, न अभाव। न रात था, न दिन। न पृथ्वी थी, न आकाश। न मृत्यु थी, न अमरत्व (जीवन)। जगत की प्रारंभिक बीजवत कामना थी। सभी जलमग्न थे। तप के प्रभाव से उत्पन्न केवल ब्रह्म था। आज यह माना जा रहा है कि हजारों साल पहले 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग शायद ऊर्जा के स्वरूप के लिए हुआ था।" ऐसे अनेक प्रसंगों को इस पुस्तक में देखा-पढ़ा जा सकता है जहाँ ज्ञान के आरंभिक स्रोत की खोज में लेखक सदियों पुरानी जानकारियाँ खोजता दिखाई देता है और फिर किसी-न-किसी शोधपरक जानकारी के साथ हम सबके सम्मुख प्रकट होता है।

ब्रह्मांड के बाद पुस्तक का उत्तरार्ध खंड है—'जीवन'। इस खंड में मानव के विकास का वर्णन है। 'जीव-उत्पत्ति की अनसुलझी बुनियादी गुत्थी' से शुरू करते हुए 'सागर में पनपा या आकाश से टपका', 'जीवन के विभिन्न चरण', 'क्या आदमी एलियन है?', 'जैव विकास के चार महाकल्प', 'मछली से विकसित हुए जलचर-थलचर', 'पृथ्वी की सुपरस्टार जीव प्रजाति डायनासोर', 'नरवानर से विकसित हुआ मानव,' 'चिम्पैंजी है आदमी का करीबी रिश्तेदार', 'खास जीन की सक्रियता से हुआ आदमी में भाषा का विकास' इत्यादि आलेखों के

द्वारा हमें मानव की अब तक की विकास गाथा की उल्लेखनीय जानकारी पढ़ने को मिलती है।

ज्ञान-विज्ञान के अनेक उल्लेखनीय तथ्यों को समेटती यह पुस्तक इस उद्देश्य को मात्र पूर्ण ही नहीं करती, अपितु पाठक वर्ग का कई नई जानकारियों से साक्षात्कार भी कराती है। मुझे आशा है कि विद्यार्थी जगत के साथ-साथ आम पाठकों को भी यह पुस्तक बहुत पसंद आएगी।

समीक्षक : **राजीव कुमार श्रीवास्तव**

लेखक : **अशोक साहनी**

हिंदी अनुवाद : **बी.आर. बामनियाँ**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 101

मूल्य : रु. 175/-

भारत में डाइनोसॉर

करोड़ों वर्षों तक धरती पर एकछत्र राज करने वाले विशालकाय डाइनोसॉरों की अनोखी और रोमांचकारी दुनिया से रू-बरू कराती अशोक साहनी की लिखी पुस्तक भारत में डाइनोसॉर आम पाठक को सहज-सरल भाषा और बड़े ही रोचक अंदाज़ में इस भारी-भरकम जीव की पृथ्वी पर उत्पत्ति से लेकर इसके विलुप्त होने के रहस्यों को वैज्ञानिक आधार पर परत-दर-परत किसी बायोस्कोप की भाँति खोलती है। पिछले 50 वर्षों से भी अधिक समय से भारत में डाइनोसॉर के जीवाश्मों, अंडों और उनके निवास-स्थलों की खोज कर रहे अशोक साहनी पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ में प्रोफेसर एमेरिटस हैं और अमेरिकन म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री, न्यूयॉर्क, स्मिथोनियन इंस्टीट्यूट, वॉशिंगटन साहित फ्रांस के पेरिस और बॉन विश्वविद्यालयों में भी इस विषय पर शोध कार्य कर चुके हैं। डायनोसॉरों पर उनके इन अथक शोध प्रयासों के चलते उन्हें अनेक मेडल्स और पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। अंग्रेजी में लिखी गई मूल पुस्तक का हिंदी अनुवाद डॉ. बी.आर. बामनियाँ ने किया है जो मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में पर्यावरण विभाग के विभागाध्यक्ष हैं।

भारत और एशिया में पहली बार डायनोसॉर के जीवाश्म लगभग दो सौ साल पहले मध्य प्रदेश के जबलपुर में मिले थे, जब 1828 में एक अंग्रेज़ सैनिक कैप्टन विलियम स्लीमेन ने वहाँ स्थित बड़ा शिमला पर्वत पर विशाल अस्थियों की खोज की थी, जिन्हें बाद में डाइनोसॉर की हड्डियों के रूप में पहचाना गया। तब से अब तक भारत के विभिन्न राज्यों में डाइनोसॉर के अनगिनत जीवाश्म मिल चुके हैं, जिनके वैज्ञानिक अध्ययनों से हमें इनकी उत्पत्ति, विकास और विलुप्त होने की अनेक जानकारियाँ मिलती हैं। यद्यपि डाइनोसॉर के सर्वप्रथम अस्थि जीवाश्म के बारे में इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के रसायन विज्ञानी प्रो. रॉबर्ट प्लॉट ने 1676 में जानकारी दी थी, लेकिन उस समय इन्हें किसी विशाल पुरातनकालीन बड़े इनसान की अस्थियाँ समझा गया। भारत में विलियम स्लीमेन के अलावा स्टेफान हिस्लॉप, डॉ. राऊस, एच. ब्लैनफोर्ड और सी. मेटले का भी डाइनोसॉर के अवशेषों की खोज में बड़ा योगदान था। डाइनोसॉर के अवशेषों की खोज करने वाले भारतीय वैज्ञानिकों में प्रो. आर. नारायण राव, प्रो. पी. संपत अयंगार, डी. चक्रवर्ती, सोहन लाल जैन, शशवती वंदोपाध्याय, डॉ. शंकर चटर्जी, पी. यदगिरि, डी. एम. मोहाबे और जेड़. गेवरिया, अशोक साहनी, जी.वी.आर. प्रसाद, डॉ. खोसला, रामिंदर लॉयल, प्रो. एस.के. टंडन, सुनील वाजपेयी, राजिंदर राणा, डॉ. रणजीत कर और के. अंबवानी के नाम प्रमुख हैं।

30-40 मीटर तक लंबे और 120 टन से भी अधिक भारी डाइनोसॉर आज से 23 करोड़ साल पहले पृथ्वी पर जन्मे थे और 15.5 करोड़ साल तक धरती पर विचरने के बाद आज से करीब 6.5 करोड़ साल पहले हमारे ग्रह पर किसी उल्का के टकराने से विलुप्त हो गए।

डायनोसॉरों की विभिन्न मांसाहारी और शाकाहारी प्रजातियाँ थीं, जिनमें आज पाए जाने वाले अन्य सरीसृपों जैसे कछुए और घड़ियाल की तरह शक्तिशाली पाद थे और वे 40 किलोमीटर प्रति घंटे या इससे भी अधिक गति से दौड़ सकते थे। वैज्ञानिकों के अनुसार, डाइनोसॉर पृथ्वी के विभिन्न पारिस्थितिकीय निकेतों में स्वयं को ढाल कर रहने वाले प्राणियों का समर्थ समूह थे जो खाद्य कड़ी के अंतिम उपभोक्ता भी थे। इसीलिए ये 16 करोड़ वर्षों तक इस ग्रह पर राज करते रहे।

डाइनोसॉर की जीवाश्म-अस्थियाँ विश्व के सभी महाद्वीपों, ध्रुवों, मरुस्थलों, उष्णकटिबंधीय वनों, मैदानी समतलों, नदियों और झीलों के किनारे तक पाई गई हैं। उत्तरी अमेरिका के मांसभक्षी और भयानक डाइनोसॉर, टाईरेनोसॉरस रेक्स पर बनी स्टीफन स्पीलबर्ग की प्रसिद्ध पुरस्कृत फिल्म 'जुरैसिक पार्क' में उसके उपद्रवों को देखकर डाइनोसॉर के डरावने स्वरूप का काफी कुछ आभास हो जाता है।

डाइनोसॉर इतना भारी शरीर लेकर किस प्रकार से चलते थे, उनके शरीर की रचना कैसी थी, वे किस प्रकार से और कितना खाते थे, उनका पाचन तंत्र कैसे कार्य करता था, आदि के बारे में वैज्ञानिक

आधार पर विस्तृत और गहन जानकारी हमें इस पुस्तक में प्राप्त होती है। जीव विज्ञान के आधार पर आज पाए जाने वाले अनेक सरीसृप व जंतु जैसे मगरमच्छ, हाथी, गैंडा, जिराफ, सिंह और बाघ आदि में करोड़ों साल पहले के डाइनोसॉर के अनेक लक्षण मिलते हैं। डाइनोसॉर किस प्रकार से जीवित रहे और समृद्ध हुए, तथा उनके व्यवहार व कारणों के बारे में यह पुस्तक बड़े सरल रूप में हमें समझाती है। साथ ही, इसमें यह भी बताया गया है कि डाइनोसॉर के जीवाश्म प्रकृति में करोड़ों वर्षों तक किस प्रकार से परिरक्षित रहे और उन्हें किस प्रकार से पहचाना और खोजा जा सकता है।

पुस्तक में मुख्यतः भारत में मिले डाइनोसॉर जीवाश्मों का उल्लेख है, जैसे—मांसाहारी इंडोसुकस रेप्टोरियस, शाकाहारी बड़ा पासॉरस (बड़े पैरों वाला सरीसृप), लंबी गर्दन वाला आपेटोसॉरस, धरती को कंपा देने वाला विशालकाय सीस्मोसॉरस, जो 30 मीटर से भी अधिक लंबा होता था, थिसक्लोसॉरस, बड़े दाँत वाला शाकाहारी टायरानोसॉरस, शाकाहारी अंटार्कटोसॉरस आदि।

भारत में इनके जीवाश्म पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु और पूर्वोत्तर राज्यों से प्राप्त हुए हैं। वहाँ उनके अंडे और घोंसलों के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो यह दर्शाते हैं कि डाइनोसॉर अपने बच्चों की देखभाल करते थे, जिससे ज्ञात होता है कि उनमें भी मातृत्व की अंतर्जात प्रवृत्ति थी।

डाइनोसॉर का जन्म मेसोजोइक काल में हुआ था, जब मध्यम जटिलता वाले जीव धरती पर विकसित हुए थे। मेसोजोइक कालखंड 25 करोड़ से 6.5 करोड़ साल पहले तक का है, जिसे ट्रायेसिक, जुरैसिक और क्रीटेशस कालों में विभाजित किया जाता है। डाइनोसॉर इन्हीं कालखंडों में पनपे और विकसित हुए थे। क्रीटेशस काल के अंत में डाइनोसॉर समाप्त हो गए और सेनोजोइक काल आते-आते पृथ्वी पर स्तनधारियों का कब्ज़ा हो गया। यह भी दिलचस्प है कि जब डाइनोसॉर जीवित थे तब भारतीय उपमहाद्वीप दक्षिणी गोलार्द्ध में अफ्रीका के पूर्वी तट पर मेडागास्कर द्वीप के पास स्थित था और इसकी जलवायु आज से भिन्न थी। पुस्तक में दी गई डाइनोसॉर वंशावली बेहद सरलता से पाठक को इसके बारे में रोचक और संपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती है।

डाइनोसॉर के अवशेषों की खोज के आधार पर भारत को तीन भौगोलिक खंडों में विभाजित किया गया है- पश्चिमी खंड जिसमें राजस्थान और गुजरात राज्य हैं; मध्य खंड जिसमें मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र राज्य हैं; और दक्षिणी खंड जिसमें आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व कर्नाटक राज्य शामिल हैं। गुजरात में खेड़ा जिले के रहिओली गाँव में भारतीय भूगर्भ वैज्ञानिक सर्वेक्षण द्वारा 1983 में स्थापित डाइनोसॉर जीवाश्म उद्यान में इनके अंडे और घोंसले देखे जा सकते हैं। इसके अलावा बालासिनोर, कच्छ, अंजार, जैसलमेर, जबलपुर, दोहाद, वर्धा, प्रणीता-गोदावरी घाटी क्षेत्र, कोटा, हैदराबाद, गोदावरी घाटी, तिरुचिरापल्ली आदि स्थानों में भारी संख्या में डाइनोसॉर के अवशेष मिले हैं। डाइनोसॉर के अवशेषों की खोज निरंतर जारी है और उम्मीद है कि हमें और आश्चर्यजनक परिणाम मिलेंगे।

पुस्तक में दिए गए अनेक चित्रों, ग्राफीय विवरणों और नक्शों से आम पाठक डाइनोसॉर के बारे में गहन और बारीक जानकारियों को बड़ी आसानी से समझ सकता है। पुस्तक के अंत में दिए गए संक्षिप्त प्रश्नोत्तर डाइनोसॉर के संबंध में हमारी सामान्य जिज्ञासाओं को शांत करते हैं और रंगीन प्लेटों पर दिए गए चित्र और नक़्शे पाठकों को, विशेषकर इस विषय के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं को भारत में एडवेंचर से भरपूर किसी शानदार डाइनोसॉर सफारी पर ले जाते हैं।

रमण महर्षि के अनमोल वचन

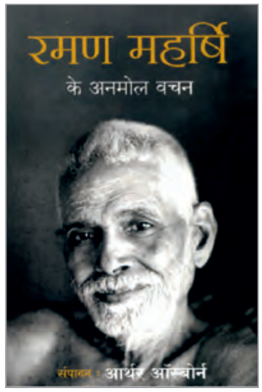

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

संपादक : **आर्थर ऑस्बोर्न**

अनुवादिका : **रचना भोला 'यामिनी'**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल

पृष्ठ : 178

मूल्य : रु. 199/-

'रमण महर्षि के अनमोल वचन' पुस्तक अंग्रेजी पुस्तक 'द टीचिंग्स ऑफ रमण महर्षि' का हिंदी अनुवाद है। मूल पुस्तक के संपादक आर्थर ऑस्बोर्न हैं। आर्थर ऑस्बोर्न ब्रिटिश मूल के लेखक थे। रमण के संपर्क में आने के बाद वे उनके परम भक्त बन गए और रमणाश्रम में रहने लगे। उन्होंने महर्षि की शिक्षाओं को पुस्तक रूप में संगृहीत किया। वे रमणाश्रम से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'द माउंटेन पाथ' के प्रथम संपादक भी थे। पुस्तक की प्रस्तावना प्रख्यात मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव युंग ने लिखी है।

रमण महर्षि (1879-1950) आधुनिक भारत के सिद्ध संतों में से एक माने जाते हैं। वे 17 वर्ष की आयु में बोधि प्राप्ति के बाद तमिलनाडु के अरुणाचल की पावन पहाड़ियों की तलहटी में बसे शहर तिरुवन्नमलई में आ गए। उन्होंने आजीवन वहीं रहकर साधना की और भक्तों का मार्गदर्शन किया।

प्रस्तुत पुस्तक रमण महर्षि और उनके भक्तों के बीच संवाद के रूप में है। महर्षि मौनप्रिय थे। उन्होंने कहा था कि सबसे सच्चा

उपदेश और आध्यात्मिक निर्देश मौन से ही संभव है। भक्त उन्हें भगवान कहते थे। जो भक्त मौन के माध्यम से भगवान के भावों को समझने में असमर्थ थे, उनके लिए उन्हें बोलना पड़ा। भक्त और भगवान के बीच मौन एक अदृश्य सेतु की तरह था, शब्द एक दृश्य सेतु की तरह। इस पुस्तक में हम देखते हैं कि रमण न्यूनतम शब्दों में उत्तर देते हैं, सरलतम शब्दों में गूढ़ भावों को समझाते हैं और उनकी व्याख्या करते हैं। प्रश्नोत्तर के क्रम में रमण तरह-तरह के दृष्टांत और उपमा देते हैं तथा मत-मतांतर की तुलना करते हैं। कई बार वे प्रश्न के उत्तर में प्रतिप्रश्न करते हैं। कहीं-कहीं परिहास और तर्क-वितर्क भी है।

देश-विदेश से आए हुए भक्त कई तरह के हैं। कुछ उत्सुक और श्रद्धालु हैं, कुछ भ्रमित और जिज्ञासु। कुछ अपने दुख से दुखी हैं, तो कुछ जगत के दुख से। सबने अपनी-अपनी मनःस्थिति और परिस्थिति के अनुसार प्रश्न किए हैं। महर्षि ने समत्वभाव से उनके उत्तर दिए हैं। प्रश्नोत्तर के माध्यम से रमण भक्तों की ज्ञान-पिपासा मिटाते हैं और कभी-कभी उसे और अधिक बढ़ा देते हैं। उन्होंने भक्तों की चेतना के स्तर के अनुसार आत्म-अनुसंधान के उपाय बताए हैं।

"मैं कौन हूँ?" की जिज्ञासा रमण महर्षि की आध्यात्मिक उपलब्धि का आधार है। वे अपने भक्तों को भी निरंतर इसी आत्मानुसंधान की प्रेरणा देते हैं। इसी वाक्य में उनके दर्शन और शिक्षाओं का सार है। वे कहते हैं कि सभी ग्रंथ केवल इसलिए बने हैं कि मनुष्य को अपने मूल स्रोत तक जाने के लिए राह मिल सके। अंततः ग्रंथ भी व्यर्थ हैं क्योंकि आत्मा को किताबों में नहीं खोजा जा सकता। आपको स्वयं ही इसे अपने भीतर खोजना है। रमण इसके लिए संन्यास लेने अथवा एकांत में जाने के लिए नहीं कहते। उनके अनुसार, आपका माहौल चाहे कोई भी हो, आप आत्म-अनुसंधान के प्रयत्न कर सकते हैं। प्रयत्न के बिना किसी को सफलता नहीं मिलती। मन का नियंत्रण आपका जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है। जो सफल हुए, वे अपनी सफलता का श्रेय अपने धैर्य को देते हैं। जब तक द्वार खोलने की इच्छा नहीं होगी, तब तक द्वार नहीं खुलेगा। आपके भीतर इसे करने की वही तड़प होनी चाहिए जो उस व्यक्ति के भीतर होती है, जो पानी में डूबा है और उससे बाहर आने के लिए तड़प रहा है ताकि उसे श्वास मिल सके। उन्होंने कहा है कि ईश्वर हमारे भीतर है, किंतु उसको जानने से पहले स्वयं को जानना जरूरी है। महर्षि ने सिद्धांत की अपेक्षा आत्म-अनुसंधान के अभ्यास को महत्वपूर्ण बताया है।

महर्षि द्वारा अलग-अलग अवसरों पर दिए गए उपदेशों को क्रमबद्ध करने के लिए संपादक ने उन्हें शीर्षकों-उपशीर्षकों में बाँटा है। पुस्तक में सात अध्याय हैं—'आधारभूत सिद्धांत', 'सिद्धांत से अभ्यास की ओर', 'जगत में जीवन', 'गुरु', 'आत्म-अनुसंधान', 'अन्य उपाय' और 'लक्ष्य'।

पुस्तक का संपादक सूत्रधार के रूप में कहीं-कहीं आया है, जैसे—नए अध्याय की भूमिका के लिए, किसी विवरण की स्पष्टता के लिए और संवाद की कड़ियों को जोड़ने के लिए। आर्थर ऑस्बोर्न रमण महर्षि के भक्त थे, किंतु महर्षि के उपदेशों पर अपने विचार रखते हुए उन्होंने तटस्थता बरती है। इस संपादकीय संयम और विवेक के लिए वे प्रशंसनीय हैं। उन्होंने महर्षि के वचनों में अगर कहीं कोई विरोधाभास देखा है, तो उसे इंगित किया है और उसके कारणों की पड़ताल की है।

इसी से बचा जीवन

समीक्षक : **मनोज मोहन**

लेखक : **राकेशरेणु**

प्रकाशक : लोकमित्र प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 250/-

कविता की स्वभाव से आत्मविश्लेषी और आत्मान्वेषी विधा है। रोज के मामलों वाले जीवन की भनक तो उसमें रहती है, पर उस यथार्थ का अगर पूरा बोझ उस पर डाला जाए, तो कविता का नाजुक ढाँचा चरमरा उठता है। कविता से हम वह काम नहीं ले सकते जिसके लिए साहित्य की अन्य विधाएँ ज़्यादा उपयुक्त ठहरती हैं, जैसे—उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि। यह बात कविता के महत्व के विरुद्ध नहीं जाती कि मूलतः वह मनुष्य की सबसे आत्मिक और कल्पनाशील चेष्टा है।

आज अच्छी कविता नहीं लिखी जा रही, आज की कविता पाठकों के समक्ष बाजार अनुकूलित होकर आ रही है, कविता की लोकप्रियता लगातार हाशिये की ओर बढ़ रही है, और कविता छंदविहीन होकर पाठकविहीन होती जा रही है। आज की कविता अराजनीतिक है और विचारों से विच्छिन्न है। ये तमाम आरोप आज की कविता के नाम हैं, लेकिन इन आरोपों के बीच 'इसी से बचा जीवन' जैसा संकलन हाथ लग जाता है जिसे पढ़ते हुए आप फिर से कविता की दुनिया में लौट आते हैं और बेहतर कविता के अहसास से भर जाते हैं। और हमें लगने लगता है कि हम कविता के पास सत्य पाने या खोजने नहीं जाते, बल्कि सच्चाई का अहसास पाने, उसमें शामिल होने जाते हैं। कविता सिर्फ सत्यकथन या संशोधन नहीं

करती, बल्कि वह सच्चाई से अपने गल्प गढ़ती चलती है। यह गढ़ना, उसके अनुभव संसार की जड़ें जीवन में गहरे धँसी हुई हैं, इसका परिणाम है। तभी वह कह पाता है कि कितनी दूर तक पसर सकती हैं जड़ें/कितनी जगह वे ऊपर लेती हैं/धरती पर/या कि कम-बेश?/अरावली की पहाड़ियाँ आच्छादित हैं/.../उनका विस्तार।

राकेशरेणु का पहला संग्रह 'रोजनामचा' संवेदनशील दुनिया रचने की कोशिश में है जहाँ गैर-बराबरी और नाइंसाफी न हो। वह अपनी कविता में कहता भी है यह जो हवा है/हमें रचती-बहती है-हमारे भीतर बाहर प्रवाहित/ये जो बादल हैं/अकूत जलराशि लिए फिरते/अपने अँगोछे में/जल ने रचा इन्हें हमारे साथ-साथ/उन्होंने जल को/दोनों समवेत रचते हैं पृथ्वी-सृष्टि।

राकेशरेणु की कविताएँ अपने वर्तमान समय के राजनीतिक आशयों को भी व्यक्त करने में सक्षम है, लेकिन वे आह्वान और उद्‌बोधन वाली शैली को नहीं अपनाते, उनका स्वर नितांत अंतर्मुखी है। इसका कारण शायद यह हो कि पूँजीवादी भूमंडलीकरण ने भारतीय समाज में संघर्ष की चेतना और संवेदना को कहीं-न-कहीं कुंठित किया है। साथ ही, एक बड़ा सच यह भी है कि हमारी भाषा की कविता मध्यवर्ग की सीमाओं और संभावनाओं में बँध-सी भी गई है। 'राजनेता' शीर्षक वाले कविता की पंक्तियाँ सहज और मानीख़ेज़ हैं। वे अपने नाम लिखा लाते हैं/सारी प्रार्थनाएँ, सारे वक्तव्य/ परिवर्तन की प्रतीक्षा नहीं करते, वे/उनके विचार में उम्र/प्रतीक्षालय के लिए नहीं/विजय के लिए होती है।

कवि की संवेदनशीलता अपने आस-पड़ोस के साथ है। यही कारण है कि अधिकांश कविताएँ स्त्री और प्रकृति को लेकर हैं, क्योंकि अंदर की दुनिया बाहर की दुनिया से बड़ी होती है। वे अपनी कविताओं में आज के चालू छद्म से लगातार बचते हैं, वे प्रकृति, व्यक्ति और जीवन में हो रहे परिवर्तन के सूक्ष्म और अदृश्य सच की पहचान के करीब होने की कोशिश करते हैं। उनकी कविता ऐसे संकेत देती हैं जिनके दृश्य पर्याय भाषा में नहीं, गहरी संवेदना से व्यक्त होती है। भारत यायावर के इस संग्रह की अग्रेषण में कहा है कि कवि भी सामान्य मनुष्य की तरह ही देखता है। किंतु कलासाधक का देखना अपनी तरह से ही संभव होता है और वे मानते हैं कि राकेशरेणु का अपनी तरह से देखना या अलग तरह से देखना ही उनकी कविताओं की विशिष्टता को प्रदर्शित करता है। उनकी कविताओं में जीवन और प्रकृति के अनेक रूपों और आकारों का प्रदर्शन है। जीवन को सकारात्मक नजरिए से देखने का ही परिणाम है कि 'अँधेरा : एक और अँधेरा : दो' जैसी कविताएँ भी व्यक्ति और समाज के लिए आशा का संचार करने में सक्षम हैं। अँधेरा वस्तुतः कुछ नहीं होता अपने में/यह कल्पना है हारे और हताश लोगों की/इसका नहीं होता निज अस्तित्व। और अंधेरा : दो की ये पंक्तियाँ जहाँ विश्वास और प्रेम जीवित है अभी/वहाँ प्रकाश है, चिरंतन प्रकाश/अँधेरा कैसे व्यापेगा वहाँ?

'तुम्हें प्यार करता हूँ/क्योंकि तुम पृथ्वी से प्यार करती हो/मैं तुममें बसता हूँ/क्योंकि तुम सभ्यताएँ सिरजती हो' जैसी राकेशरेणु की कविताओं को पढ़ते हुए कुँवर नारायण की ये पंक्तियाँ भी याद आती चली जाती हैं कि दुनिया की सारी कविताओं से, एक कविता कम की लगातार दूरी पर मैं एक उम्मीद की रफ्तार से चल रहा हूँ और सूर्यास्त से पहले वहाँ पहुँचना चाहता हूँ, जहाँ अँधेरा न पहुँच सके।

पाप और अन्य कहानियाँ

समीक्षक : **दीप्ति अंगरीश**

लेखिका : **पारमिता शतपथी**

अनुवादक : **राजेन्द्र प्रसाद मिश्र**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

पृष्ठ : 135

मूल्य : रु. 300/-

« कहानी सिर्फ मूक-अमूक प्रकृति का ब्यौरा नहीं वरन समाज का आईना है। कहानी छोटी हो या लंबी, इसके पात्रों से समाज, संवेदनाओं, कष्ट, उपलब्धि, संस्कार, सोच, अधूरी आकांक्षाओं की जानकारी मिलती है। या यूँ कहें कि कहानी का मर्म जानकर ही हम बहुत कुछ सीख सकते हैं और सोच को व्यापक बना सकते हैं। ऐसी ही विशिष्टताओं से लबरेज हैं पारमिता शतपथी की कहानियाँ।

पारमिता शतपथी पेशे से इनकम टैक्स कमिश्नर हैं, लेकिन उनकी कहानियाँ बताती हैं कि वे एक बेहद उत्कृष्ट कहानीकार भी हैं। प्रेम कहानियों का संग्रह न होने के बावजूद लेखिका द्वारा स्नेह के बेहद सूक्ष्म, रेशमी और चटख रंग के धागों से, लगभग सभी कहानियों में की गई प्रेम की खूबसूरत कसीदाकारी देखने लायक है। ये ओड़िया भाषा की प्रतिष्ठित, चर्चित और सम्मानित कथाकार हैं। इनकी कई रचनाएँ हिंदी, अंग्रेजी और कई भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं।

कहानी संकलन 'पाप और अन्य कहानियाँ' में पारमिता शतपथी की चर्चित कहानियों को शामिल किया गया है। इस कहानी संकलन में कुल दस कहानियाँ हैं। सभी में कथाकार ने एक

मनोचिकित्सक की तरह मन में भावों को पढ़ा है और उसे शब्दों में बुना है। पारमिता अपनी कहानियों में समाज के वंचित-दुर्बल लोगों का पक्ष लेते हुए साफ दिखाई देती हैं और खाए-पिए-अघाए लोगों के प्रति उनकी घृणा भी दृष्टिगोचर होती है।

संकलन की प्रथम कहानी 'पाप' में बच्चे के मनोविज्ञान, भूख, गरीबी और लाचारी का खाका तैयार करेगी। 10-11 साल का बुनू पेट की भूख मिटाने के लिए दास बाबू की मुर्गी को मार देता है। चोरी को छिपाते हुए माँ से खलिहान में मिलने की बात बताता है। पेट की आग इतनी थी कि माँ ने बुनू की बानगी पर विश्वास कर लिया और परिवार के लिए मांस और भात बनाया। शायद घर में खाने की पूर्ण व्यवस्था होती, तो उस दिन बुनू स्कूल जाता और मुर्गी को मारता नहीं। कहानी आगे बढ़ती और बुनू की उस दिन की भूख परिवार के लिए काल का न्यौता बनती है। पेट की आग क्या कुछ करवा देती है। मुर्गी चोरी के लिए बुनू के बप्पा को दास बाबू का मँझला बेटा जेल भेज देता है। माँ अकेले बुनू, रुनू, मानू और कानू के साथ पति की बाट जोहती है। जब पति की रिहाई नहीं होती दिखती, तो माँ अपने बच्चों के साथ कुएँ में कूद जाती है। कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। इस पूरे घटनाक्रम में बुनू का बालमन यही समझता है कि अपने परिवार का वह खूनी है। साथ ही नन्हे बुनू के प्रति मामी का नौकराना सुलूक अति दर्दनायक है।

इस कहानी संकलन में हर तरह के भावों, दोस्ती, अनुभूति, उपलब्धि, प्रेम, दलाली, परिवार, संस्कार, क्रोध, दुख, गरीबी को अंकित किया गया है। कहानी 'कादंबरी' में तीन दोस्तों की कहानी को अतिसुंदर तरीके से बुना गया है। 55-56 वर्षीय तीन दोस्तों को अर्से बाद एक साथ समय बिताने का मौका मिला है। नीलिमा, नीरद, निर्मल, सबके जीवन में प्यार आया, पर उसे पा नहीं सके—नीरद को नीरा, नीलिमा को समीर और निर्मल को दीक्षा भटनागर। कहानी में विफलता की बानगी मिलती है, जब अतीत के पन्ने खँगालते हैं।

"असली कादंबरी का स्वाद तो उन लोगों ने ही चखा था-नीरा, समीर और दीक्षा ने। हम तो बस नशे के इर्द-गिर्द घूमते रह गए जीवनभर। अब तो शाम हो चुकी है। लगता है, भींचकर पकड़ रखने जैसा कोई भी अहसास नहीं कर सके जिंदगी में।" नीलिमा ने कहा।

इस संकलन की सभी कहानियाँ एक सोच को जन्म देती हैं। बहुत कुछ कहती हैं। सिर्फ हाई क्लास लोगों की किस्सागोई नहीं। मसलन कहानी 'दलाल' में कथाकार ने मध्य वर्ग के उथलेपन और चालाकियों को बखूबी प्रदर्शित किया है। इसमें कहानी के नायक का नामकरण उन्होंने उस आदमी से किया जो आदमी मध्य वर्ग का है। उसमें दलाल के सारे गुण हैं। वह इन्हीं गुणों के बल पर रुतबे वाले लोगों को सफाई से ठगता है। आलम यह है कि उसे कोई ठग नहीं सकता, लेकिन एक चतुर लड़की के हाथों ठगा जाता है। कहानी के अंत में लड़की का पति उस आदमी को कहता है "चल फुट ले यहाँ से! फुट ले कहता हूँ, नहीं तो मार डालूँगा"। वह ड्राइवर लड़की की मुट्ठी से अपना हाथ छुड़ाकर दो-तीन डग आगे बढ़ गया।

पुस्तक की बेहतरीन कहानी है 'चाँदी का कंगन'। इसमें प्यार को कैनवस पर अंकित किया नायक मोहन ने। कहानी का दूसरा नायक अशोक, जो आधे पन्ने का प्रख्यात चित्रकार मोहन का साक्षात्कार पढ़ता है और 25-26 साल पहले की मुलाकातों को याद करता है। जयदेव भवन में लगी मोहन के चित्रों की प्रदर्शनी। प्रदर्शनी का खास था चाँदी जैसे रंग का गोलाकार चित्र मानो पिघली हुई चाँदी में ढाला गया हो। असल में वह चित्र था राधा आइजक के चाँदी के कंगन का, जिसे मोहन अपने बिस्तर के नीचे रखता था। कहानीकार ने असफल प्यार के हर भावों की मूक भाषा को खूबसूरती से व्यक्त किया है। इस तरह संकलन की हर कहानी समाज के हर वर्ग की बारीकियों को स्पष्ट दिखाती है। बिना दुराव-छिपाव के। चाहे कहानी 'चाँदी का कंगन' हो या 'कुरई का फूल' या 'अभाव' या 'चिड़िया' या 'केमिस्ट्री' या 'यो लोग भी...' या 'लड़की'।

कहानी संकलन से उड़ीसा के खान-पान की काफी जानकारी मिलती है, जैसे उड़ीसा का प्रिय भोजन पखाल-भात, आलू का भर्ता, आलू की भुजिया, भात-मांस की तरकारी, मछली में बालिया, भाकुर व रोहू मछली की तरकारी और लाल चाय। असल में, पारमिता शतपथी को उनके संवेदना और समाज की गहरी समझ के लिए जाना गया है। पारमिता की कहानी संग्रह में समाज के वंचित दुर्बल लोगों का पक्ष लेते हुए वो साफ दिखाई देती है और खाए, पिए, अघाए लोगों के प्रति उनकी घृणा भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। 'दलाल' कहानी में उन्होंने नायक को शुरू से अंत तक 'वह आदमी' कहकर ही संबोधित किया है। उसे कोई नाम नहीं दिया है। उल्लेखनीय यह है कि वह आधुनिक समाज के निम्न तबके के दुख-तकलीफों के साथ मध्य वर्ग के उथलेपन की भी गहरी समझ रखती हैं। 'दलाल' ऐसी ही कहानी है, जिसमें एक व्यक्ति अपने सामान्य चालाकियों से अकूत संपत्ति अर्जित करता है, लेकिन अंत में एक चतुर लड़की के हाथों ठगा जाता है।

राजेंद्र प्रसाद मिश्र द्वारा मूल ओड़िया से अनूदित इन कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा नहीं लगता कि अनुवाद पढ़ रहे हैं। संकलन में क्लिष्ट हिंदी का प्रयोग नहीं किया गया है। इसमें अंग्रेजी शब्दों की बहुलता है, जैसे- चीयर्स, फैमिली, कॉम्पलीकेशंस, स्टोव, एस्बेस्टस, वीमेंस कॉलेज, एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, फोन, प्लस टू, एजेंडा आदि। उड़िया भाषा की कहानियों का हिंदी अनुवाद भी कहानियों को रोचक बना रहा है कि मूल कथा शैली दिलचस्प बनी रही है कि एक बार शुरू करने पर आप पढ़ते ही चले जाएँगे।

समीक्षक : **केशव पटेल**

लेखक : **आशीष कौल**

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

पृष्ठ : 254

मूल्य : रु. 500/-

रिफ्यूजी कैंप

हिंदी साहित्य के उपन्यासों में ऐसे उपन्यास बेहद कम हैं, जिनमें साहित्य को ऐतिहासिकता की प्रामाणिकता में परोसा गया हो। रिफ्यूजी कैंप एक ऐसा ही साहित्यिक दस्तावेज है, जिसे उस हर भारतीय को पढ़ना चाहिए जिसने कश्मीर की वादियों को समाचार-पत्रों की हेडलाइंस या ख़बरिया चैनल्स की सुर्खियों के माध्यम से ही देखा, सुना और जाना हो। रिफ्यूजी कैंप सिर्फ अभिमन्यु की कहानी नहीं है, यह घाटी में रहने वाले उस हर शख्स की कहानी है, जिसने कश्मीर की ख़ूबसूरत वादियों में नफ़रत की धुंध को फैलते देखा है। और इसे महज़ कहानी क्यों कहा जाए, रिफ्यूजी कैंप कश्मीर की बिखर और बिसर चुकी विरासत एवं संस्कृति से रू-बरू कराता एक जीता-जागता दस्तावेज है।

एक सांस्कृतिक विरासत का अनुभव रखने वाला व्यक्ति जब कोई साहित्य लिखता है तो वह सिर्फ साहित्य नहीं होता, आने वाले इतिहास के लिए एक दस्तावेज भी होता है। आशीष कौल ने वही साबित किया है। रिफ्यूजी कैंप किसी टूटे दिल की दास्ताँ या दो बिछड़े दिलों की महज़ एक कहानी भर नहीं है, यह जज्बातों का वो समंदर है जो अपनी विरासत, अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता और सबसे बढ़कर अपनी माटी से बिछड़ने और उससे मिलने की तड़प का सूनापन लिए ज़हन के किनारों से टकराता रहता है।

कोई भी व्यक्ति जब अपनी जन्मभूमि से कहीं और प्रवास करता है तो वो अपने साथ अपनी संस्कृति को विरासत के तौर पर ले जाता है, और इसे ही वह अपनी आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाता भी है। लेकिन कश्मीर से जबरदस्ती विस्थापित कर दिये गए कश्मीरी पंडितों की संस्कृति तो वहीं रह गई, अपने ही देश में रिफ्यूजी कहलाने वाले इन हिंदुस्तानियों के सामने अपने आनी वाली पीढ़ियों को अपनी संस्कृति को विरासत के रूप में सौंपने का यक्ष प्रश्न कितना कंटीला रहा होगा, इसे रिफ्यूजी कैंप पढ़कर समझा जा सकता है। ये वो लोग थे जिनके सिर्फ घर नहीं छूटे, पीछे छूट गया था किसी शहनाज़ की थाली में अभिमन्यु के लिए मुख्तार के हाथों से तोड़ी गई रोटी का टुकड़ा, किसी आरती की पूजा की थाली में मुख्तार के नाम का चंदन का टीका। ये वो लोग थे जिन्होंने माज़िद और इस्माइल चाचा की नमाज़ के लिए जमीनें साफ की थीं, तो अभय प्रताप और दीनानाथ को पूजा से पहले उनके मंदिरों की सीढ़ियाँ साफ मिली थीं। यह वो दर्द है जिसे भरने के लिए रोशनी को अँधेरे का सफ़र तय करना पड़ा, यह वो दर्द है जिसे गुनगुनाने के लिए जसप्रीत को कई रात जागना पड़ा।

यह उस हर नौजवान की कहानी है, जिसने केसर की ख़ुशबू में गूँजती कश्मीर की घाटी को 'वरवरोलिव, गोलिब या चेलिव' के नारों में बदलते देखा, जिसने वादी के कई खुशनुमा मौसमों को दहला देने वाली काली रातों में बर्फ की चादरों को लाल होते देखा। यह कहानी उस हर आदमी की जिसे वादियों ने अपने औलाद की तरह अपने दामन में समेट रखा था। यह दर्द है उस हर टूटे दिल का, जो अपनी सरज़मी से निकलते ही औरों के लिए रजिस्टर में दर्ज महज़ एक आँकड़ा हो गया। यह कहानी है उस इस्लाम की जिसे पाकिस्तान में कहवे की गर्म चुस्कियों के साथ मौसिकी में पेश किया जाता है और वादी में बंदूक से निकलने वाली गोलियों की शक्ल में। यह कहानी है उस इस्लाम की जिसने जेहाद-अल-अकबर और जेहाद-अल-असगर के बीच का फर्क समझे बिना खुद को शरणार्थी में बदलकर एक लंबे और कभी न ख़त्म होने वाले सफ़र में छोड़ दिया।

रिफ्यूजी कैंप सरकार के लिए एक प्रश्न भी है कि कैसे एक भारतीय अपने ही देश में रिफ्यूजी हो गया। उसके चेहरे से उसकी कश्मीरियत की पहचान मिटा दी गई, कैसे उसकी आँखों के नीले-कत्थई रंग के रौनक की जगह, दहशत से भरे सुर्ख लाल रंग ने ले ली। यह कहानी है दर्द से उपजे उस हर गीत की, जिसे गुनगुनाने का लहजा हम सबके दिल में कहीं टीस बनकर सिमट कर रह गया है। यह कहानी है मेरी भी और आपकी भी, क्योंकि यह कहानी है वादियों में रहने वाले हमारे 'हम-वतनों' की।

एमबीए किए बिना सीखें बिज़नेस के हुनर

समीक्षक : **शैलेश कुमार चौधरी**

लेखक : **जॉश कॉफ़मैन**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल

पृष्ठ : 392

मूल्य : रु. 450/-

उदारीकरण के पश्चात संपूर्ण विश्व सिमट कर एक हो गया है। इस दौर में व्यवसाय प्रबंधन की आवश्यकता निजी और सार्वजनिक हर प्रकार के प्रतिष्ठान में अनुभव की जा रही है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए बाजार में कई पुस्तकें उपलब्ध हैं, लेकिन समग्र रूप से व्यापार प्रबंधन से जुड़े तमाम पहलुओं को एक पुस्तक में समाहित कर पाठकों तक पहुँचाने वाली पुस्तक का

नितांत अभाव रहा है। इस कमी को यह पुस्तक पूरा करती है। व्यवसाय, वित्त, प्रबंधन से जुड़ी हर प्रकार की जानकारी को लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में बारीकी से समझाया है। डॉ. सुधीर दीक्षित द्वारा सरल और प्रवाहमयी भाषा में किया गया पुस्तकीय अनुवाद इसकी अन्य प्रमुख विशेषता है। व्यावसायिक जगत में जॉश कॉफ़मैन किसी परिचय के मोहताज़ नहीं हैं। व्यावसायिक सलाहकार के रूप में उन्होंने ज्यादा पैसे कमाने, ज्यादा काम करने और अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने में लोगों की सहायता की है।

लेखक अपनी इस रचना को एमबीए की डिग्री से भी बेहतर मानते हैं। वे कहते हैं कि एमबीए करना एक महँगा सौदा है। आपकी आर्थिक स्थिति चाहे जैसी हो, इसे तर्कसंगत ठहराना लगभग असंभव है। हारवर्ड और वॉर्टन जैसे प्रतिष्ठित कॉलेज भी पुराने प्रोग्राम पढ़ाते हैं, जहाँ आप पॉवरपॉइंट प्रेजेंटेशन तथा अनावश्यक वित्तीय मॉडल बनाने के बारे में ज्यादा सीखते हैं और वास्तविक जीवन में व्यवसाय चलाने के लिए आवश्यक बातें कम सीखते हैं। अगर आप बिज़नेस स्कूल नहीं जाते हैं और इस पुस्तक में बताई गई बातों पर अमल करते हैं, तो आपको बेहतर परिणाम मिल सकते हैं और मूल्यवान समय के साथ एक बड़ी धनराशि भी बच सकती है। बिज़नेस स्कूल सच्चे लीडर नहीं बनाते हैं, बल्कि लोग तो आवश्यक ज्ञान, योग्यताओं और अनुभव की तलाश करके खुद को लीडर बनाते हैं। लेखक का दावा है कि पुस्तक के पढ़ने से अपनी शर्तों पर खुद के व्यवसाय में सफल हो सकते हैं।

यदि हम कहें कि वर्तमान युग व्यवसाय, वित्त और प्रबंधन का युग है तो यह किसी दृष्टि से अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं जान पड़ता। व्यवसायी के रूप में आपका काम उन चीजों को पहचानना है, जो लोगों के पास पर्याप्त नहीं है और फिर वे चीजें उन्हें देने का तरीका खोजना है। संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय वे हैं, जो दूसरे लोगों के लिए सर्वाधिक मूल्य उत्पन्न करते हैं। वित्त पैसे के किसी व्यवसाय के अंदर-बाहर होने वाले प्रवाह को देखने की कला और विज्ञान है। इसमें यह निर्णय लेना भी शामिल है कि इसे कैसे आवंटित किया जाए। प्रत्येक सफल व्यवसाय को कायम रहने के लिए निश्चित कमाई करनी होती है। प्रबंधन एक अनूठी योग्यता है, जिसमें अनुशासन, धैर्य, स्पष्ट संप्रेषण और मिलकर काम कर रहे हर व्यक्ति को अनावश्यक विघ्नों से बचाने की वचनबद्धता की जरूरत होती है।

यह पुस्तक 12 खंडों में विभाजित है। पुस्तक का पहला खंड है—'यह पुस्तक क्यों पढ़ें?' पाठकों के समक्ष अपनी प्रासंगिकता स्पष्ट करता प्रतीत होता है। असफलता से निराश हो चुके लोगों में आशा का संचार करती यह पुस्तक बताती है कि आपको सर्वज्ञाता होने की कोई जरूरत नहीं है। केवल कुछ अति महत्वपूर्ण अवधारणाओं को ही समझना होता है, जो सबसे ज्यादा मूल्यवान होती हैं।

लेखक का मानना है कि मार्केटिंग किसी व्यवसाय का मूल नहीं हो सकता। यदि लोगों को यह पता नहीं है कि आप बाजार में मौजूद हैं, तो वे आपके द्वारा दी जाने वाली चीज को नहीं खरीद सकते। अगर आपकी पेशकश में लोगों की रुचि नहीं है, तो वे ग्राहक मानकर भुगतान नहीं करेंगे।

यह पुस्तक मात्र व्यवसाय के बारे में ही नहीं बताती, अपितु इससे काफी आगे तक जाती है। आप अपनी आजीविका चलाने के लिए कोई भी काम कर रहे हों, यह पुस्तक उसमें तरक्की करने में आपकी सहायक है। अगर आप पहले से कोई व्यवसाय चला रहे हैं, तो इस पुस्तक की मदद से आप अपने तंत्रों की कमजोरियों को पहचान सकते हैं और ज्यादा अच्छे परिणाम पा सकते हैं।

हर सफल व्यवसाय को कायम रहने के लिए निश्चित कमाई करनी होती है। यदि आप मूल्य का सृजन, मार्केटिंग और बिक्री कर रहे हैं तथा मूल्य पहुँचा रहे हैं, तो पैसे का प्रवाह हर दिन आपके व्यवसाय के अंदर-बाहर हो रहा है। अस्तित्व में बने रहने के लिए हर व्यवसाय को पर्याप्त आमदनी करनी चाहिए ताकि व्यवसाय चलाने के लिए लगने वाले समय और मेहनत को तर्कसंगत साबित किया जा सके। इसके अतिरिक्त 'यह पुस्तक क्यों पढ़ें', 'मूल्य उत्पन्न करना', 'मार्केटिंग', 'बिक्री', 'मूल्य पहुँचाना', 'वित्त', 'मानव मन', 'खुद के साथ काम करना', 'दूसरों के साथ काम करना', 'तंत्रों को समझना', 'तंत्रों का विश्लेषण करना' एवं 'तंत्रों को बेहतर बनाना' शीर्षकों या खंडों के माध्यम से व्यवसाय की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बारीकियों का आसान शब्दों में विश्लेषण किया है।

यह पुस्तक पाठकों में व्यवसाय के प्रति रुचि जागृत करती है। जहाँ यह व्यवसाय के विविध पहलुओं का ज्ञान करवाती है, वहीं पाठकों के मन में उठने वाले प्रश्नों के जवाब भी सुलभ करवाती है। यह पुस्तक व्यवसाय को एक नवीन दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रेरित करती है। प्रस्तुत पुस्तक में कई ऐसे सारगर्भित तथ्य, बारीकियाँ और उल्लेख व्याप्त हैं, जो पुस्तक को सर्वकालिक महत्व का तो बनाते ही हैं, इसे पठनीय और संग्रहणीय भी बनाते हैं। अर्थशास्त्र से जुड़े अनेक विषयों को दुरूह विषय समझा जाता है, लेकिन लेखक ने उदाहरणों तथा कहानियों के द्वारा इसे रोचक बना दिया है। पाठकों को जागरूक करने तथा उनकी सुविधा के लिए 'इस पुस्तक का इस्तेमाल कैसे करें' नाम से एक पृथक शीर्षक दिया गया है। बिज़नेस स्कूल की समस्याओं को उद्घाटित कर यह पुस्तक एमबीए करने के इच्छुक युवाओं को पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। व्यवसाय से जुड़े विविध पहलुओं को समृद्ध तथा सामयिक बनाने का जो प्रयास लेखक ने किया है। आशा करते हैं कि इससे व्यावसायिक हुनर की दशा और दिशा निश्चित ही बदलेगी। कुल मिलाकर संपूर्ण संसार के लाखों व्यावसायिक पेशेवरों को समर्पित यह पुस्तक निर्धन लोगों के लिए एक वरदान के समान है।

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **संतोष त्रिवेदी**

प्रकाशक : अयन प्रकाशन, महरौली, दिल्ली

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 250/-

नकटों के शहर में

(व्यंग्य-संग्रह)

संतोष त्रिवेदी की रचनात्मकता निरर्थक, निरुद्देश्य और मात्र लिखने के लिए लिखना का परिणाम न होकर हमारे समय-समाज के बीच निरंतर व्याप्त होती विसंगतियों-विद्रूपताओं की खोज और टकराहट है। 'नकटों के शहर में' लेखक का अद्यतन प्रकाशित व्यंग्य-संग्रह है। संतोष त्रिवेदी के लेखन में हमें वर्तमान से खिलवाड़ या पलायन नहीं, अपितु वर्तमान से मुठभेड़ दिखाई पड़ती है। जिस तेजी से समकालीन व्यंग्य में इनकी सक्रियता बढ़ी है, वह काबिले गौर है। यहाँ संग्रह की रचनाओं के बहाने इनके रचनाकर्म और रचनादृष्टि का विश्लेषण करने की कोशिश करेंगे।

संतोष त्रिवेदी की रचनाएँ हमारे समाज की विसंगतियों-विद्रूपताओं को सामने लाने का परिणाम हैं। हम जब आज के समय-समाज की पड़ताल करते हैं तो पाते हैं कि आज हम सब बाजारवादी व्यवस्था में जीने के लिए मजबूर हैं। चाहकर भी इस व्यवस्था से स्वयं को बाहर रख पाना या बचा पाना संभव नहीं है। बाजारवादी व्यवस्था हम सबको अपने सुरसारूपी मुख में समाविष्ट कर लेने को बेताब है। हमारे समय-समाज की विडंबना यह है कि आज के दौर में जो बिकाऊ है, अथवा बिक गया, वही सफल है। जो बिकाऊ न हो सके, या जो 'अनबिके' रह गए, उनको आज के समय के लिए मिसफिट और असफल करार दिया जाता है। इसका एक छोटा-सा नमूना आप 'न बिक पाने का दुःख' रचना में देख सकते हैं। यह रचना 'आईपीएल' के लिए क्रिकेट खिलाड़ियों की नीलामी में अनबिके रह गए खिलाड़ी की व्यथा-कथा को जिस तरह उभारती है, वह हमें बार-बार सोचने को मजबूर करती है। "'अनबिका' रह जाना उनके कैरियर की सबसे बड़ी असफलता है। इस बिकाऊ समय में 'अनबिके' रहने का दर्द उनसे ज्यादा और किसे होगा? घर वालों को बिना-बिका मुँह दिखाएँगे तो लज्जा नहीं आएगी? वे तो उजला करने वाली क्रीम चुपड़कर बैठे थे, फिर भी खरीदारों को गच्चा नहीं दे पाए। .....जो खुद को ठीक से बेच भी न सके वह कुछ भी हो सकता है, अच्छा 'खिलाड़ी' नहीं।" ऐसी असंख्य विसंगतियाँ प्रायः हम सब देखते हुए जीने के अभ्यस्त हो चुके हैं, किंतु इनके पीछे की अमानवीयता को जब रचनाकार अपनी रचनात्मकता में समाविष्ट कर हमारे सामने रखता है तो हमारी आँखें खुली-की-खुली रह जाती हैं।

इस संग्रह में अनेक ऐसी रचनाएँ संकलित हैं जिन्हें पढ़ते हुए पाठकों को एक अलग ही अंदाज, एक अलग ही तेवर का साक्षात्कार होगा। हालाँकि कहीं-कहीं कुछ रचनाओं को पढ़ते हुए आप पाएँगे कि हिंदी का यह लेखक अंग्रेजी के शब्दों से भी कोई गुरेज नहीं करता। इसका आशय यह कतई नहीं है कि लेखक अंग्रेजी के शब्दों को जबरन रचना में ठूँसने का पक्षधर है, बल्कि जहाँ प्रसंग की माँग है वहाँ उस शब्दिशेष को उसका अनुवाद कर प्रस्तुत करने की बजाय प्रचलित रूप में ही रखकर पाठकों की सुविधा का ख़्याल रखा गया है ताकि अर्थ बाधित न हो। न ही पठनीयता में बाधा हो।

हमारे समय की विडंबना यह है कि यहाँ गिरने वालों की भीड़ बढ़ती ही जा रही है और आश्चर्य यह है कि गिरने का कोई अफ़सोस भी नहीं है। इस प्रवृत्ति पर एक रचना है- 'गिरकर उठने का सुख।' इसे पढ़ते हुए इसके सहज-सरल और सांकेतिक वाक्य रचना को बहुत प्रभावी बनाते हैं। "वे फिर से गिर गए हैं। अबकी बार गहरे गड्ढे में गिरे हैं, सड़क पर चलते हुए वे देश के प्रति चिंतन कर रहे थे। इस बीच बरसाती पानी से लबालब छोटे-मोटे गड्ढों ने कई बार उन्हें अपनी गोद में बैठाना चाहा, पर वे सफल नहीं हो पाए। वे जरा गहरे मिजाज़ के आदमी ठहरे, इसलिए गहराई में चले गए। दृढ़निश्चयी इतने कि बारिश की तरह उनका चिंतन भी मूसलाधार बरस रहा था।.....सहमति से 'गिरना' वैसे भी कोई अपराध नहीं है। यहाँ तो सड़क, सरकार और ईश्वर सब उनके साथ हैं। वे गिरे हैं तो इसमें भी देश का ही भला है।" लेखक ने बड़ी सफाई से इन पंक्तियों में संकेतों द्वारा व्यंग्य-प्रहार किया है। इस रचना को पढ़कर पाठकों को अपने आस-पास के चरित्रों की याद भी आ सकती है। असल में लेखक जिस परिवेश में जीवन जी रहा होता है, उसमें जो कुछ भी उसे असंगत प्रतीत होता है, उन्हीं बिंदुओं पर उसकी कलम चलती है। हमारी तरह ही लेखक की भी जीवनचर्या होती है। इसलिए वह जिन बिंदुओं पर लिखता है, उससे जुड़े अथवा मिलते-जुलते पात्र हमारे परिवेश में भी हो सकते हैं।

संग्रह की शीर्षक रचना है 'नकटों के शहर में'। भारतीय जनमानस की मान्यता के अनुसार नाक हमारी प्रतिष्ठा का प्रतीक है। इसीलिए जब कोई गतिविधि हमारी प्रतिष्ठा में कमी का कारण

बनती है तो उसे नाक कटाने वाला कृत्य कहा-माना जाता है। विडंबना यह है कि आज पहले के मुकाबले नाक कटाने वाले लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। पूरी नाक वाले अपवाद और अल्पसंख्यक की भाँति नजर आने लगे हैं। जहाँ तक लेखक की दृष्टि जाती है, नकटे ही नकटे नजर आते हैं। लेखक को लगता है, मानो वह नकटों के शहर में रह रहा है, जिन्होंने अपने स्वार्थों में अंधे होकर अपनी नाक (प्रतिष्ठा) कटा डाली है। "जब से नाक कटने का एलान हुआ है, शहर के नकटे खुश हैं। उनको लगता है कि इस कदम से समाज में बराबरी कायम होगी। लोग जैसे होंगे, वैसे ही दिखेंगे। ऊँच-नीच का भेद भी ख़त्म होगा। सभी की सूरतें सपाट और सच्ची होंगी। अभी तक सुंदरता और समृद्धि की माप नाक से होती थी। वही नहीं होगी, तो क्या अमीर क्या गरीब! सौंदर्य के बाजार में भी ठंडक बढ़ेगी। इससे सामाजिक सद्भाव तो बढ़ेगा ही, सरकार को भी राहत मिलेगी।"

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **धर्मपाल महेंद्र जैन**

प्रकाशक : शिवाना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.)

पृष्ठ : 160

मूल्य : रु. 250/-

इस समय तक

(कविता-संग्रह)

भौतिकी, हिंदी एवं अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर प्रवासी भारतीय धर्मपाल महेंद्र जैन मूलतः व्यंग्यकार तथा कवि हैं। उनका पहला व्यंग्य-संग्रह 'सर, क्यों दाँत फाड़ रहा है' वर्ष 1984 में प्रकाशित हुआ था। और अब उनका प्रथम कविता-संग्रह 'इस समय तक' शिवाना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल 78 कविताएँ संगृहीत हैं जो 'माँ', 'प्यार', 'बेटी', 'शब्द', 'मेरा गाँव', 'प्रकृति', 'सत्ता' एवं 'आदमी' मुख्य शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित हैं।

दुनिया के सभी धर्मग्रंथों में माँ की श्रेष्ठता, पवित्रता एवं त्याग को केंद्र में रखकर अनके कविताएँ लिखी गई हैं। भारतीय 'ग्रंथों' में ईश्वर के अवतार माने-जाने वाले 'राम', 'कृष्ण' ने भी अपनी माँ कौशल्या एवं देवकी, यशोदा की वंदना की है। कवि जैन ने भी 'प्रार्थना' शीर्षक कविता में माँ को इस रूप में संबोधित किया है।

श्रेष्ठतम प्रार्थना/लिखने के लिए/तमाम शब्द चुने/ज़िंदगी भर मैंने/और लिखा 'माँ'।

आध्यात्मिक दृष्टि से प्रार्थना को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी तो अपनी दिनचर्या की शुरुआत ही प्रार्थना से करते थे। प्रार्थना आदमी को विनम्र बनाती है। अंतःकरण से प्रार्थना करने वाला व्यक्ति पूरे ब्रह्मांड को ईश्वरीय शक्ति के रूप में देखता है। वह भूल कर भी किसी का अहित नहीं कर सकता। कण-कण में ईश्वरीय शक्ति को महसूस करता है। उपर्युक्त चार पंक्तियों में कवि ने माँ की श्रेष्णता को रेखांकित किया है। माँ के प्रति बच्चे चाहे कितने भी कलुषित भाव रखें, माँ भूलकर भी उनका अहित नहीं करना चाहती। कमजोर बच्चे के प्रति माँ की दया ममता अत्यधिक होती है।

'प्यार' पर संयत भाषा में कविता लिखना बहुत ही कठिन कर्म है। कवि जैन ने तो 'प्यार से प्रश्न' किया है। वाकई जब मन से मन का मिलन हो जाता है तो शब्द के रूप में भाव उद्बोधित नहीं होते। सच पूछो तो 'प्यार' में आदमी को अपनी काया भी भार-सी लगती है। दो शरीरों की धड़कन एक हो जाती है। इस कविता की पंक्तियों में पाठकगण कवि मन को गहराई से महसूस कर सकते हैं।

दो मनों की धड़कनों के राग का अनुवाद हो तुम
राग़िनी बन बह रहे हो शब्द बनकर क्या करोगे?

उम्र का रिश्ता देह से होता है। देह की अवस्था पल-पल बदलती रहती है और एक समय ऐसा आता है कि उसका अवसान हो जाता है, पर प्रेम तो शाश्वत है।

इन पक्तियों में कवि मन के भाव को महसूस कीजिए।

दर्द की लय पर रची मुस्कान हो मेरे अधर पर
साथ हो अनगिन जनम, उम्र बन कर क्या करोगे?

'वह रोशनी बनाए रखती है' शीर्षक कविता में कवि ने 'पत्नी' के संघर्ष, त्याग तथा जिम्मेदारी को बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरा है। जो पति अपनी पत्नी को प्यार भरी नजरों से देखता है, उसकी दिनचर्या में अपने जीवन का उत्कर्ष पा जाता है। उसके जीवन में जल तरंग बजने लगती है। घर में भी रहकर वह मंदिर की पवित्रता महसूस करता है।

इन पक्तियों में कवि मन की बानगी देखें—

"उसके बिखरे केशों से/टपकती हैं जल बूँदें/और टनटना उठती हैं/मंदिर में घंटियाँ। उठने लगती है रसोई से/महक धान्य की/मैं हो जाता हूँ समय पर सवार/अपनी दिशाओं में दौड़ने।"

'कल मिलो तो' शीर्षक कविता में कवि मन अभिजात्य वर्ग की महिलाओं से अपने को दूर रखना चाहता है। वह अपनी प्रेमिका के उलझे, बिखरे बालों के स्पर्श में आनंद की अनुभूति करता है। तभी तो कह उठता है—

कल मिलो तो बाल वैसे ही भले/कहीं उलझे, कहीं बिखरे/
अभिजात्य केशों में/उँगलियाँ नहीं, फँसतीं, नहीं चलतीं।

'बेटी' शीर्षक कविता में बेटी का मूल भाव यह है कि बिना 'बेटी' दांपत्य जीवन निरर्थक है। माता-पिता के प्रति बेटी का लगाव और उसके उद्बोधन में सारी सृष्टि समाहित है। इस कविता में बेटी की सार्थकता महसूस कीजिए—

वह बोलती है- माँ/तो पा लेती है समूची धरती।
वह बोलती है- पा/तो छू लेती है सारा आकाश।

बेटी के संबोधन में 'माँ' धरती जैसी गरिमा और 'पिता' आकाश जैसा असीमित दायरे का फलक पा जाता है।

'शब्द' को ब्रह्म कहा गया है। इसलिए कहा गया है कि कभी भी अनर्गल बातें न करें। 'कविता के संग' शीर्षक कविता में कवि चाहता है कि कटुता, घमंड, घृणा, स्वार्थ कार्पण्य अपने सारे दुर्गण छोड़कर-स्नेहामृत में बदल जाएँ।

'भारत' तो गाँवों में बसता है। गाँव के लोगों में एक-दूसरे के प्रति चाहे कितनी भी कटुता हो, एक-दूसरे के दुख में शामिल हो जाते हैं।

'पीढ़ी दर पीढ़ी' शीर्षक कविता में पुत्र-पिता की महत्ता रेखांकित करते हुए धरती से अपना तादात्म्य किस रूप में स्थापित करता है, उसकी बानगी देखें—

"अँधेरे में पिता की तरह/रोशनी देते रहे पिता/और धीरे-धीरे धधकाते रहे/मेरी आत्मा में सूरज को/कि पहचानने लगूँ/अपनी धरती।"

'धूप एक बात बताओ' शीर्षक कविता में कवि 'धूप' को संबोधित करते हुए कहता है कि पौष-माघ के महीने में ऊँची अट्टालिकाओं के छज्जों पर दस्तक देती हो। जेठ-आषाढ़ में झोपड़ियों पर डंक मारती हो, आँधी के पंख पर बैठकर तांडव नृत्य करती हो। आखिर ऐसा क्यों करती हो, गरीबों को भी अपना प्यार दो।

'ओ चिड़िया' शीर्षक कविता में चिड़िया का बार-बार फुदकना, उड़ना, घास के तिनके को चुनना, तस्वीर के पीछे घोंसला बनाना कवि मन को आनंद विभोर कर देता है।

इन कविताओं में जिंदगी के विविध रूप देखने को मिलते हैं। मानवीय संबंधों को गहराई से उकेरा गया है।

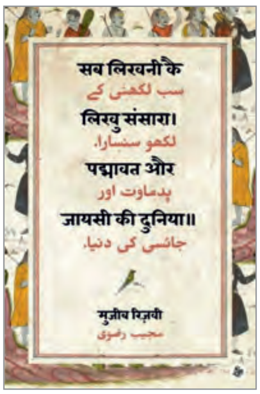

सब लिखनी कै लिखु संसारा। पद्मावत और जायसी की दुनिया।।

समीक्षक : **गणपत तेली**

लेखक : **मुज़ीब रिजवी**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

पृष्ठ : 350

मूल्य : रु. 350/- (पेपरबैक)

मलिक मोहम्मद जायसी भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, लेकिन जितना महत्वपूर्ण स्थान वे रखते हैं, हिंदी की वर्तमान आलोचना जगत में उन्हें उसी के अनुरूप स्थान प्राप्त नहीं है। आज भी जायसी के लिए बात जायसी ग्रंथावली की भूमिका, साही की जायसी के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती है, जबकि इन दोनों कार्यों को प्रकाशित हुए एक अरसा हो गया है। इस दरमियान विश्वविद्यालयों में जायसी पर शोध होते रहे और लेख भी आते रहे, लेकिन कोई बड़ा हस्तक्षेप सामने नहीं आया। जायसी ही क्यों, सूफी साहित्य की ही स्थिति ऐसी रही। भक्तिकाव्य की अन्य धाराएँ इस उपेक्षा की शिकार नहीं हुई। इसके तमाम कारण हो सकते हैं, लेकिन एक वाजिब कारण यह है कि जिस व्यापक धरातल पर सूफी काव्य विस्तृत है, उसे साध पाना आसान नहीं है। इसके लिए आवश्यक सांस्कृतिक, मिथकीय और भाषाई ज्ञान दुर्लभ है। जायसी साहित्य-जगत में अधिकारपूर्वक प्रवेश करने के लिए आवश्यक है कि लेखक को हिंदू-मुस्लिम मिथकों, धार्मिक परंपराओं की बारीक जानकारियों के साथ-साथ अवधी और फारसी भाषा एवं साहित्यिक परंपराओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है। यह संयोग विरले ही मिलता है।

मुजीब रिज़वी की सद्य प्रकाशित पुस्तक 'सब लिखनी कै लिखु संसारा, पद्मावत और जायसी की दुनिया' इस अभाव की पूर्ति करती है। प्रो. मुजीब रिज़वी लंबे समय तक जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली के हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से डॉ. हरवंशलाल के निर्देशन में पीएच.डी के लिए शोध प्रबंध के रूप में जायसी और पद्मावत पर शोध किया था। यह पुस्तक उसी शोध का परिवर्द्धित रूप है, जो पाँच अध्यायों में विभक्त है—जायसी ग्रंथ पुनरावलोकन, जायसी ग्रंथों का रचनाक्रम, जायसी गुरु-परंपरा विवेचन, पद्मावती का रूप चित्रण और फ़ारसी पदावली और जायसी का रचना संसार-सांस्कृतिक पैतृकी। जाहिर है कि पुस्तक में प्रोफ़ेसर रिज़वी का मुख्य ध्यान जायसी के ग्रंथों और गुरु के संबंध में प्रमाणिक खोजबीन एवं उनके काव्य के सांस्कृतिक पक्षों के अध्ययन पर रहा है। इस क्रम में सर्वप्रथम लेखक जायसी के ग्रंथ 'आखिरी कलाम' संबंधी भ्रम का निवारण करते हैं और लिखते हैं कि, "'आख़िरी कलाम' के नामकरण के संबंध में अत्यधिक मतभेद हैं। कोई इसे जायसी की अंतिम रचना सिद्ध करने का प्रयास करता है और कोई वर्ण्य विषय के आधार पर इसे अखरत (प्रलय काव्य) स्वीकार करता है। वास्तविकता यह है कि न तो यह अंतिम काव्य है और न ही बयान-ए-किताब (पुस्तक चर्चा)। यह मसनवी शैली का महत्वपूर्ण अंग है और 'आख़िरी' शब्द का प्रयोग जायसी ने 'आख़िरत' के अपभ्रंश के रूप में किया है।" और "अपने नाम से अंतिम रचना लगने वाला 'आख़िरी कलाम' जायसी का प्रथम एवं आरंभिक ग्रंथ है।" इसके साथ ही वे जायसी के आख़िरी कलाम, कहरानामा, मसलानामा, चित्र रेखा, कन्हउत, ब्रह्म अवतरण, तदानी और तदल्ली आदि ग्रंथों के वर्ण्य-विषय की विस्तार से विवेचना करते हैं।

दूसरे अध्याय में लेखक जायसी के जीवन और उनके ग्रंथों के संबंध में खोजबीन करते हुए प्रामाणिकता तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। इसके लिए ग्रंथों में आए विवरणों को अन्य रचनाओं-रचनाकारों के विवरणों एवं राजनीतिक घटनाक्रमों के साथ जाँचने-परखने का काम करते हैं और इसी क्रम में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जायसी ने पद्मावत 927 हिजरी में ही लिखना प्रारंभ कर दिया, लेकिन वे आजीवन उसका परिवर्द्धन करते रहे। जैसे-जैसे उन्हें प्रेरक घटनाएँ मिलती गईं, वे

'पद्मावत' के अनुकूल प्रसंगों में उसका समाविष्ट करते गए। इसी प्रकार की पद्धति वे जायसी के जन्म और मृत्यु संबंधी निर्धारण में अपनाते हैं। जायसी की गुरु-परंपरा का विवेचन करते हुए लेखक रामचंद्र शुक्ल के विपरीत जायसी की दो गुरु परंपरा का निर्धारण करते हैं। शुक्ल अशरफ़ जहाँगीर को ही जायसी का गुरु मानते हैं, जबकि लेखक अपनी खोजबीन में पाते हैं कि जायसी ने "'आख़िरी कलाम' और 'अखरावट' में प्रथम गुरु परंपरा के अंतर्गत केवल सैयद अशरफ़ की वंदना की है और 'चित्ररेखा' में द्वितीय गुरु परंपरा के अंतर्गत केवल कालपी नगर के शेख बुरहान का स्तवन है।"

पद्मावत के वर्ण्य-विषयों का विश्लेषण करते हुए मुजीब रिज़वी रामचंद्र शुक्ल से सहमत होते हुए इसे हिंदी का श्रेष्ठ विरह-काव्य मानते हैं लेकिन वे इसके सौंदर्य चित्रण को भी उतना ही महत्वपूर्ण मानते हैं। वे लिखते हैं कि "जायसी वियोग वर्णन के समान ही सौंदर्य चित्रण में अद्वितीय हैं। उनकी कला और कल्पना का प्रौढ़तम भागांश उनके निखिल सृष्टिव्यापी सादृश्यमूलक सौंदर्य वर्णन में है। मानसरोदक खंड में पद्मावती का मुख सभी चराचरों को उनका वास्तविक स्वरूप बोध कराने के लिए दर्पण सिद्ध होता है। अनुभूति और अभिव्यक्ति की यही रमणीयता जायसी काव्य की आत्मा है। पद्मावती के माध्यम से ही पद्मावतकार ने अपनी सौंदर्यानुभूति और उसकी विराट कल्पना के अंतः-बाह्य स्वरूप की ललित व्यंजना की है।" वे जायसी के संभोग वर्णन और नख-शिख वर्णन को इस संबंध में रेखांकित करते हैं। इसी संदर्भ में वे जायसी के यहाँ सूफी तत्व को रेखांकित करते हैं। विजयदेवनारायण साही के विपरीत वे सूफी तत्व को जायसी के रचना विधान का महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं।

जायसी की सांस्कृतिक दृष्टि को विश्लेषित करते हुए लेखक बताते हैं कि जायसी ने इस्लाम और हिंदू दोनों धर्मों के मिथकों और धार्मिक मान्यताओं को अपने विवेचन में प्रयुक्त किया है। उनके यहाँ आदम, मुहम्मद, कुरआन, प्रलय, पुलासरात, सूफी सिद्धांत और साधना, इब्लीस अथवा नारद, यात्रा अथवा आवाजाही, जीत-पत्र, महादेव, आकाश, शिवलोक, इंद्रलोक, लंका, राम, सीता, रावण, हनुमान आदि से संबद्ध वर्णन प्रचुरता से मिलते हैं और ये अपने मूल रूप में न होकर जायसी की दृष्टि के अनुरूप काव्य में प्रविष्ट होते हैं। प्रो. रिज़वी लिखते हैं कि "अनेक भारतीय देवी-देवताओं और पौराणिक पात्रों द्वारा इस्लामी मान्यताओं को मूर्तमान करने में जायसी संलग्न हैं। समन्वयवादी दृष्टिकोण उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य करता है।"

शैली पर बात करते हुए लेखक इस बात पर जोर देते हैं कि जायसी ने मसनवी रचना-विधान को ही अपनी रचनाओं में अपनाया, किंतु उन्होंने भारतीय परिवेश से नाता नहीं तोड़ा। इस मामले में सबसे उपयुक्त उदाहरण उनकी समास-योजना है। लेखक लिखते हैं कि "फारसी ढंग के समासों का प्रचुर प्रयोग जायसी ने किया, किंतु आश्चर्य है कि उनकी समास-योजना में फारसी का कोई भी शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ और ठेठ अवधी के ठाठ को आघात नहीं पहुँचने पाया है।" लेखक ऐसे समासों की विस्तृत तालिका प्रस्तुत करते हैं और रामचंद्र शुक्ल की इस धारणा का खंडन करते हैं कि जायसी ने सामासिक पदों का प्रयोग बहुत ही कम किया है। इसी तरह जायसी ने फारसी मुहावरों को देसी रूप देने का कमाल भी किया है। पुस्तक में ऐसे मुहावरों की तालिका भी दी हुई है। इसी तरह मुजीब रिज़वी इस बात को भी रेखांकित करते हैं कि जायसी के यहाँ अर्थ-उत्पादन के लिए निरर्थक और सार्थक ध्वनियों का बहुत प्रयोग मिलता है, जो फारसी शैली से प्रभावित है, लेकिन जायसी के यहाँ वहाँ से अधिक प्रभावशाली है।

प्रो. मुजीब रिज़वी के निधन के कुछ वर्षों बाद उनके परिजनों के प्रयासों से प्रकाशित इस किताब को अंतिम रूप वे स्वयं नहीं दे पाए थे, इसलिए संभव है कि बहुत से प्रसंगों को वे और भी व्याख्यायित करना चाह रहे हों। फ़िर भी अपने वर्तमान स्वरूप में यह किताब जायसी संबंधी अध्ययनों में एक महत्वपूर्ण मुकाम है, जो आचार्य रामचंद्र शुक्ल और विजदेवनारायण साही की मान्यताओं से आगे का है। जायसी के जीवन और उनकी रचनाओं के प्रसंग में मुजीब रिज़वी की खोजबीन जायसी से संबंधित कई भ्रमों का निवारण करने में सहायक होगी।

'स्त्री और समुद्र'

समीक्षक : **उत्कर्ष अग्निहोत्री**

लेखक : **राकेश शर्मा**

प्रकाशक : 'नीरज बुक सेंटर', दिल्ली

पृष्ठ : 112

मूल्य : रु. 200/-

कविता संसार को संसार में गहरे पैठकर समझने का या यूँ कहें कि समष्टि को आलोचना करने का, उसे अधिक जानने का अनूठा प्रयत्न है। ये मानवीय संवेदनाओं, आकांक्षाओं, राग-अनुराग, चिंतन, दर्शन और उस परमात्म तत्व तथा उसकी सृष्टि के विविध आयाम की परिपक्वता को सभी स्तरों से जानने का एक उपक्रम है। इसी का साक्ष्य प्रस्तुत करती है एक कवि, समालोचक, व्याख्याता, निबंधकार और संपादक श्री राकेश शर्माजी की नई कविता की शैली में रची गई पुस्तक 'स्त्री और समुद्र'। उन्हें कविता के संस्कार अपने कैशोर्य में पिताजी के द्वारा कराए गए 'रामचरितमानस' पाठ से प्राप्त हुए। इसी के साथ इस महत् ग्रंथ में

भारतीयता का जो अनुपम प्राकट्य हुआ है, वह उनके भीतर के रचनाकार को सहज ही उपलब्ध हो गया। आगे चलकर यह उनके व्यक्तित्व और कर्तव्य का अपरिहार्य अंश बन गया। उन्होंने अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में जो संघर्ष किया, उससे उनकी रचनाधर्मिता और अधिक परिपक्व होती गई। उनके इस संकलन की कविताएँ अपनी अभिनव कथन भंगिमा, भाव प्रवणता, पौराणिक व सांस्कृतिक सौरभ और विषय वैविध्य के कारण अद्भुत हैं। कवि साहित्य को भाषा का मकरंद मानता है और कहता है कि "पुष्प की गंध का आनंद वही ले सकता है जिसकी घ्राण-शक्ति तीव्र हो। हमारे समकाल में तनावों से लड़ता मनुष्य अपनी घ्राण-शक्ति खोता जा रहा है। ऐसे में पुष्प को हम देख तो सकते हैं परंतु उसकी सुगंध का आनंद नहीं ले सकते। साहित्य का भी यही हाल है।" लेकिन कवि के चित्त में भाषा के प्रति अगाध श्रद्धा है। वाणीपुत्र होने के लिए वह उससे मातृत्व भाव से जुड़ता है और कहता है—

"भाषा! तुम माँ हो/अनेक-अनेक रूपों में/अवतरित होती हो तुम/पर, तुम्हारा यह प्रश्नवाची अवतरण/संसार के नाद का मूल है।"

शब्द ब्रह्म है और उस ब्रह्म की काव्यमय सृष्टि का निदर्शन इस पुस्तक में सर्वत्र परिलक्षित होता है। ये आध्यात्मिक स्वर उन्हें वैदिक ज्ञान मात्र से नहीं, अपितु उसे आत्मसात कर शनैः-शनैः जीवन के अनुभवों से प्राप्त हुआ है। वही उनकी वाग्मिता से प्रकट होता है। वस्तुतः यही मौलिकता कवि की पूँजी है। प्रायः नई कविता मार्क्सवाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद आदि से प्रभावित रही है। लेकिन कुँवर नारायणजी कहते हैं, "बड़ा साहित्य इस तरह के विभाजन को स्वीकार नहीं करता है। ये सब कहीं-न-कहीं उसकी सामर्थ्य को संकुचित करते हैं। साहित्य अपनी शक्ति और सामर्थ्य को समवेत ढंग से जीवन से लेता है। जहाँ वाद प्रमुख हो जाता है, वहाँ साहित्य की शक्ति कम हो जाती है। जो साहित्य जीवन से जुड़ता है, उसमें जीवंतता के लक्षण दिखते हैं।" राकेश शर्माजी की कविताओं में जीवन का वही समवेत स्वर सुनाई देता है, जिसे कुँवर नारायणजी ने अपने कथन में कहा है। ये कविताएँ छंदमुक्त होने के बावजूद भावों के अनूठे संगुम्फन के कारण एक प्रवाह, एक लय पाती है। यही इनका सौंदर्य है जो हमारी वेदना को स्पंदित कर संवेदना में परिणत कर देता है। इनमें जगह-जगह वैचारिक संघर्ष है। इसी संघर्ष का निष्कर्ष व्यक्तित्व का आदर्श प्रस्तुत करता है। ये आदर्श लोकमंगल की कामना के साथ-साथ उसके प्रबोधक कवि के लिए भी है। वे कहते हैं—

"कवि दृष्टा है/दृष्टा होना एक साधना है/पात्रता का अर्जन है/कविता को धारने की/उसे शब्दों में उतारने की।"

उनका कवि होना संयोग है, किंतु उसके इस प्राप्य के लिए तपश्चर्या ही काम्य है। ये उनके कवि-व्यक्तित्व की विराटता को प्रस्तुत करती हैं। जहाँ वे मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक धरोहरों को अपनी काव्य कला के सूत्र में पिरोते हैं, वहीं शब्दों में आ रही घिसावट तथा उसके अर्थों में आ रही कमी का भी उतनी ही सतर्कता से उद्घाटन करते हैं। और जीवन में आए बाजारवाद की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं कि हर व्यक्ति में से मनुजता का जो लोप होता जा रहा है, वह हम सबके लिए एक बड़ा संकट है—

"अब बाजार नहीं रहा/केवल जरूरी सामान/खरीद और फरोख्त की जगह/आदमी भी हो गया तब्दील/एक जरूरी सामान में।"

वे कहते हैं कि अब आदमी की दृष्टि सभी कुछ वस्तु की तरह आँकने की आदी हो गई है। उसकी आँखों में सच्चे अर्थों में किसी के प्रति स्नेह और सम्मान का भाव अब दिखता ही नहीं। नैतिकता और मूल्य जैसे शब्द तो अब बेमानी से हो गए हैं। उसे लगने लगा है कि जैसे समग्र सृष्टि का सारतत्व तो उसे पता ही है। ग्राह्य क्षमता का अभाव हो गया है। ऐसे आवश्यक विश्लेषणों को वे अपनी कविताओं में बड़ी ही कुशलता से शब्दायित करते हैं और सत्यं, शिवम्, सुंदरम् की ओर प्रवृत्त करते हैं। साहित्य में सदा से साहित्यकारों ने अपने-अपने परिदृश्य को समय के साथ चित्रित किया है, जिसके कारण उसके स्थान, परिवेश, संस्कृति और समय को जाना जा सकता है। संकलन की एक कविता 'अपने समय के लिए' में, वे अपने समय और समाज में आई विकृतियों और दिन-ब-दिन जीवन में लाए जा रहे सहज जीवन विरोधी बदलाव की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं और कालरूप ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, "हे मेरे समय! दया बरसाओ" उनका ये अस्ति भाव ही पूरी पुस्तक का मूल स्वर है। ये कविताएँ हमारी चेतना को जागृति प्रदान करती हैं और सकारात्मकता के प्रति एक दृढ़ विश्वास बँधाती हैं। दूसरा पक्ष इस पुस्तक में स्त्री अस्मिता को लेकर हमारे सामने आता है। जहाँ कवि उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है और उसके सामाजिक अनुभवों का शब्दांकन करता है। वर्तमान में जो स्त्री-विमर्श चल रहा है, वह उसका प्रारंभ आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व महाभारत काल से बताते हुए पुरुष प्रधान समाज की सदा से रही शासन की मानसिकता का समीक्षण करते हैं और अपनी सत्ता को अच्युत रखने के लिए वह अपने जीवन-सिद्धांतों से भी समझौता करता है। स्त्री मन का विवेचन करते हुए वे कहते हैं—

"भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य से तुम/दर्शक की तरह देखो इसे/और रहना मौन ही/चीरहरण के प्रसंग पर/तुम रहते ही आए हो मौन/मौन ही तुम्हारा पुरुषार्थ और प्रारब्ध भी/इसी कुत्सित मौन के गर्भ में/पलता रहा है हर युग के महाभारत का भ्रूण।"

ये कविताएँ समय से संवाद भी हैं, जीवन का आस्वाद भी हैं और खुरदरे यथार्थ का अनुवाद भी। इनमें स्त्री-पुरुष की सामाजिक उपस्थिति का गंभीर शोध मिलता है, जो हमें पुनः-पुनः इन पर मनन करने के लिए विवश करता है और यही हमें सबके प्रति हार्दिकता प्रदान करता है।

पुस्तकें मिलीं

मैं जनक नंदिनी

अलौकिक सीता की लौकिक प्रस्तुति

आशा प्रभात

प्रस्तुत उपन्यास सीता के जन्म से अंतकाल तक की लगभग सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को मानवीय एवं लौकिक धरातल पर तर्क के साथ प्रस्तुत करने का सफल प्रयास है। सीता जिन्हें हमारे ग्रंथों में अलौकिक मान लिया गया, उन्हीं का लौकिक स्वरूप हमें इसमें देखने को मिलता है। अतः पुस्तक में एक ऐतिहासिक पात्र को नए तरीके से व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। इसमें तेंतालीस अध्याय हैं।

राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली

पृ. 320; रु. 299.00

विटामिन ज़िन्दगी

ललित कुमार

राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता रोल मॉडल

जिस तरह शरीर को विभिन्न विटामिन चाहिए, उसी तरह मन को भी आशा, विश्वास, साहस और प्रेरणा जैसे विटामिनों की आवश्यकता होती है। जीवन में हम सभी का सामना विभिन्न समस्याओं, चुनौतियों, निराशाओं और संघर्षों से होता है। इन सबसे जीतने के लिए हमारे पास 'विटामिन ज़िंदगी का होना आवश्यक है। पुस्तक के लेखक श्री ललित कुमार का सफ़र 'असामान्य से असाधारण' तक का सफ़र है। पोलियो जैसी बीमारी ने उन्हें सामान्य से असामान्य बना दिया, लेकिन अपनी मेहनत और जज़्बे के बल पर उन्होंने स्वयं को एक रोल मॉडल बनाया। इसी सफ़र की कहानी प्रस्तुत करती यह पुस्तक पाठकों के लिए बेहद प्रेरणादायी है।

हिन्द युग्म, दिल्ली ● **पृ. 256; रु. 199.00**

दृष्टि

महिला लघुकथाकार अंक

संपादक : अशोक जैन

लघुकथा को पूर्णतया समर्पित अर्धवार्षिक पत्रिका 'दृष्टि', लघुकथा के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दे रही है। पत्रिका के इस अंक में लगभग 100 लघुकथाएँ संकलित की गई हैं जो विभिन्न महिला कथाकारों द्वारा लिखी गई हैं। इस अंक में शामिल की गई लघुकथाओं में विभिन्न विषयों को समेटने का प्रयास किया गया है कुछ कहानियों के शीर्षक हैं—शहर, ऐब, रिश्ता, गली, शिक्षा का मानदंड, अनुभूति दर्द की, सफ़र, सम्मान, गृह प्रवेश, सूखी नदी, सच्ची पूजा आदि। रोचकता से पिरोई गई ये कथाएँ अलग-अलग सामाजिक संदेश देती हैं तथा मानव संवेदनाओं को जगाती हैं।

नेक सदन, सेक्टर-7 एक्सटेंशन, गुरुग्राम

पृ. 168; सदस्यता सहयोग : 6 अंक : रु. 500.00; 12 अंक : रु. 1000.00; आजीवन : रु. 5100.00

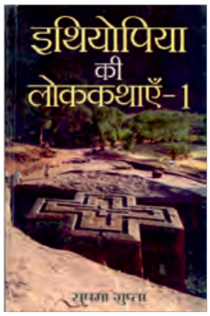

इथियोपिया की लोककथाएँ-1

सुषमा गुप्ता

लोककथाएँ किसी भी समाज की संस्कृति का एक अटूट हिस्सा होती हैं। इस पुस्तक में अफ्रीका के इथियोपिया देश की लोककथाएँ हिंदीभाषियों के लिए हिंदी में प्रकाशित की गई हैं। ये लोकथाएँ इथियोपिया के जीवन की एक झलक प्रस्तुत करने में सहायक होंगी तथा दूसरे देशों की संस्कृति के बारे में भी जानकारी देंगी। पुस्तक रंगीन एवं आकर्षक चित्रों से भरपूर है।

प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

पृ. 120; रु. 250.00

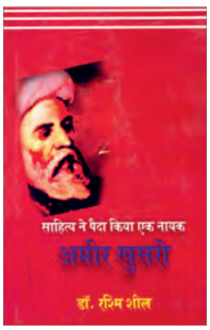

साहित्य ने पैदा किया एक नायक

अमीर खुसरो

डॉ. रश्मि शील

तूतिए हिंद नाम से प्रसिद्ध, खड़ी बोली के महान कवि, अमीर खुसरो पर आधारित प्रस्तुत पुस्तक दो खंडों में विभाजित है। पहले खंड में खुसरो के जन्म, पढ़ाई-लिखाई, जीवकोपार्जन आदि के बारे में वर्णन किया गया है वहीं दूसरे खंड में अमीर खुसरो की पहेलियाँ, सुखन, मुकरियाँ, निस्बतें, फुटकर काव्य, गीत, कव्वाली, फारसी व हिंदी मिश्रित छंद, दोहे, ग़ज़लें आदि प्रस्तुत की गई हैं।

लता साहित्य सदन, गाजियाबाद

पृ. 220; रु.101.00

पदचिन्ह : समय की बालू पर

अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

भारतीय सांस्कृतिक गौरव के विश्वभर में फैले पदचिह्नों का स्मरण कराने वाले प्रेरक निबंधों का संग्रह जिनसे देश की माटी तथा संस्कृति के सौंधेपन को सहेजने और उन्हें आगामी पीढ़ियों को सौंपने का प्रयास किया गया है। इसमें लेखक द्वारा विभिन्न कालखंडों में लिखे गए निबंध, संस्मरण तथा समाचार फीचर्स को संगृहीत किया गया है। इन्हें प्रमुख रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, जो ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं, दूसरे वे जो सांस्कृतिक परंपराओं पर हैं।

(इस पुस्तक का प्रकाशन उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ की 'प्रकाशन अनुदान योजना' के अंतर्गत वित्तीय वर्ष 2017-18 में किया गया है।)

यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली

पृ. 142; रु. 200.00 (सजिल्द), रु. 100.00 (पेपर बैक)

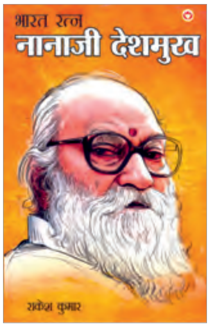

भारत रत्न

नानाजी देशमुख

राकेश कुमार

महान व्यक्तित्व और सच्ची देशभक्ति की मिसाल, नानाजी देशमुख के जीवन पर आधारित प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के लिए प्रेरणास्रोत है। नानाजी देशमुख को 2019 में भारत रत्न से सम्मानित किया जा चुका है। वे एक भारतीय समाजसेवी थे। उन्होंने एकात्म मानववाद के आधार पर ग्रामीण भारत के विकास की रूपरेखा बनाई। वे ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर को सुधारना चाहते थे। यह पुस्तक उनके महान व्यक्तित्व की गरिमा से देशवासियों का परिचय करवाती है।

डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली

पृ. 144; रु.150.00

सब ख़ैरियत है

मार्टिन जॉन

समंदर, मेक इन इंडिया, सब ख़ैरियत है, सुपरस्टार, पुरस्कार, मुक्ति का मार्ग, वजूद अपना अपना, एक मौन समझौता, ये कौन सी डगर है जैसी लगभग 59 लघुकथाओं का संग्रह है यह पुस्तक। इन कथाओं के माध्यम से विभिन्न विषयों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। लेखक की भाषा सरल है जिसमें रचनात्मकता का पुट दिखाई पड़ता है।

बोधी प्रकाशन, जयपुर

पृ. 128; रु. 200.00

व्यक्तिवाचक

तुलसी रमण

यह व्यक्तिवाचक वैचारिक धरातल पर व्यक्तिवादी नहीं है। इसमें एक खास दौर के लेखकों, कलाकारों और संस्कृतिकर्मियों के व्यक्तित्व और कृतित्व के बहाने, नवगठित हिमाचल प्रदेश में साहित्य, कला और संस्कृति के विकास का जायज़ा लेने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक का देश हिमाचल का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रदेश है। इसका काल बीसवीं सदी के मध्य में स्वतंत्रता पूर्व से शुरू होकर स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की अर्द्धशती में विस्तार पाता है।

साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली

पृ. 240; रु. 107.00

खेत के पाँव

(ग़ज़ल संग्रह)

अनुराग 'गैर'

प्रस्तुत संग्रह की 101 ग़ज़लें मन को प्रभावित करने वाली हैं। ग़ज़लें नयेपन से लबरेज तो हैं ही साथ ही, शैली की दृष्टि से भी सहज होने के कारण पाठकों के साथ एक आत्मीय रिश्ता बना लेती हैं। पुस्तक के अंत में साहित्यिक शब्दकोष भी दिया गया है जिसमें ग़ज़लों में प्रयोग किए साहित्यिक शब्दों के अर्थ दिए गए हैं।

गगन स्वर बुक्स, गाज़ियाबाद

पृ. 192; रु. 250.00

गाँव-गाँव की कहानियाँ

डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल

16 कहानियों के इस संग्रह में लेखक ने हिंदी साहित्य के कुछ अनछुए विषयों को चुना है। ग्राम प्रधान की प्रेमिका, पट्टादार ननुआ, बटाईदार काने खाँ, विडंबना, वृद्धा, सूरज आदि कहानियाँ ग्रामीण भारत को सजीव प्रस्तुत करती हैं। वहीं अन्य कहानियाँ महानगरीय परिवेश, कस्बे की पृष्ठभूमि, भारतीय न्याय व्यवस्था आदि विषयों पर आधारित हैं। सभी कहानियों में लेखक का वैविध्यपूर्ण अनुभव प्रतिबिंबित होता है।

विद्या विकास एकेडमी, नई दिल्ली

पृ. 150; रु. 300.00

देश समाज और गांधी

अनुवाद : कँवल भारती

महात्मा गंधी के 150वें जयंती वर्ष के अवसर पर पब्लिक रिलेशंस सोसायटी, भोपाल द्वारा 'देश समाज और गांधी' शीर्षक स्मारिका का प्रकाशन किया गया है। इसमें प्रसिद्ध लेखकों और गांधीवादी विचारकों ने गांधीजी के विचारों, कार्य और उनकी सोच पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। स्मारिका में विभिन्न विषयों पर गांधीजी द्वारा समय-समय पर व्यक्त किए गए विचारों को भी एकत्र कर प्रस्तुत किया गया है।

पब्लिक रिलेशंस सोसायटी, भोपाल

पृ. 164; रु. (मूल्य उपलब्ध नहीं)

भारत मेक्सिको के पुस्तक मेला में सम्मानित अतिथि देश होगा

मेक्सिको में 30 नवंबर से 8 दिसंबर, 2019 की अवधि में होने वाले ग्वाडालाजरा अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेला में भारत सम्मानित अतिथि देश होगा। इसके संबंध में 6 जून, 2019 को मेक्सिको स्थित भारतीय दूतावास में आयोजित प्रेस कॉन्फ्रेंस में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा तथा मेक्सिको स्थित भारतीय राजदूत श्री मुक्तेश के. परदेशी ने घोषणा करते हुए सम्मानित अतिथि देश के रूप में भारतीय प्रस्तुति की कुछ विशेषताओं का विवरण भी दिया। इस अवसर पर आयोजक देश की ओर से सुश्री शुल्ज मनॉट ने भी संबोधन किया। न्यास में अंग्रेजी भाषा के संपादक श्री कुमार विक्रम भी उपस्थित थे।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन कार्यरत राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नोडेल एजेंसी होने के नाते मेक्सिको के पुस्तक मेले में भारत के सम्मानित अतिथि देश होने की समस्त गतिविधियों का समन्वय करेगा।

मेक्सिको के इस पुस्तक मेले में भारत अपने समृद्ध और मिश्रित सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विरासत की व्यापक शृंखला को प्रस्तुत करेगा जिसके अंतर्गत 35 से अधिक लेखक/कलाकार/वैज्ञानिक/विज्ञान संचारक/बाल लेखक; 15 प्रकाशनगृह; साहित्यिक एवं अकादेमिक गतिविधियाँ जिनमें सम्मेलन, प्रकाशक सम्मिलन, विमर्श तथा विज्ञान एवं अन्य विधाओं में प्रस्तुति; तीन वृहत प्रदर्शनियाँ जिनमें शामिल होंगी प्राचीन एवं दुर्लभ हस्तलिपियाँ, फोटो पुस्तकें, हस्तशिल्प एवं पेंटिंग पर वाल हैंगिंग; भारत की प्रख्यात 40 महिला कलाकारों द्वारा आधुनिक कला; भारत महोत्सव जिसमें लोक, शास्त्रीय एवं समकालीन जैसे 10 कन्सर्ट शामिल होंगे यानी सांस्कृतिक कार्यक्रमों की एक विस्तृत शृंखला तथा भारतीय साहित्य को एक कलात्मक श्रद्धांजलि जैसे कार्यक्रम अन्य अनेक गतिविधियों के साथ-साथ होंगे।

इतना ही नहीं, एक फिल्म महोत्सव का आयोजन भी होगा जिसमें अनेक फीचर फिल्में होंगी तथा एक भोजन महोत्सव भी होगा। ग्वाडालाजरा के विभिन्न स्थानों और कासा डे ला इंडिया में, जो भारतीय भोजन, हस्तशिल्प एवं कला सामग्रियों का सांस्कृतिक केंद्र है, में स्ट्रीट शोज भी होंगे जहाँ उक्त भारतीय वस्तुएँ प्रदर्शनी एवं विक्रय हेतु प्रदर्शित होंगी।

वारसा पुस्तक मेला

23 से 26 मई, 2019 की अवधि में पोलैंड की राजधानी वारसा में आयोजित 'वारसा पुस्तक मेला' में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने भी भागीदारी की। वारसा में यह 10वाँ पुस्तक मेला था। न्यास ने भारतीय पुस्तक उद्योग का इस पुस्तक मेला में प्रतिनिधित्व किया। न्यास द्वारा पुस्तक मेले में अंग्रेजी एवं हिंदी में प्रकाशित लगभग 150 पुस्तकें प्रदर्शन हेतु भारतीय प्रकाशकों की ओर से ले जायी गईं। न्यास की विगत अनेक वर्षों से इस मेले में भागीदारी रही है।

पुस्तक मेले में 27 देशों के लगभग 800 प्रदर्शक तथा लेखक, अनुवादक, चित्रकार, पत्रकार एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व के रूप में 1030 से अधिक सृजनधर्मी उपस्थित हुए थे। मेला में एनबीटी के स्टॉल का उद्घाटन पोलैंड एवं लिथुआनिया में भारतीय राजदूत श्री सेवांग नामग्याल ने किया।

मेला में रोमानिया को सम्मानित अतिथि देश के रूप में बुलाया गया था। मेले में व्यापक पैमाने पर साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन किये गए, जिनमें बाल गतिविधियाँ भी शामिल थीं। बच्चों की पुस्तकें भी व्यापक पैमाने पर प्रदर्शित की गईं। न्यास के असमिया भाषा संपादक श्री दीप सैकिया तथा सहायक निदेशक श्री आशीष चौधुरी ने मेला में भागीदारी की।

पुस्तक प्रकाशन प्रशिक्षण कार्यक्रम

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा 22वें 'पुस्तक प्रकाशन प्रशिक्षण' कार्यक्रम का आयोजन आठ अगस्त से चार सितंबर, 2019 तक किया गया। उद्घाटन उद्बोधन में मुख्य अतिथि व भारतीय जनसंचार संस्थान के महानिदेशक श्री के.एस. धतवालिया ने प्रशिक्षण की उपयोगिता पर अपने अनुभव साझा करते हुए मुद्रण और प्रकाशन संबंधी बारीकियों पर चर्चा की। न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविन्द प्रसाद शर्मा ने प्रकाशन क्षेत्र में तकनीकी के बदलते स्वरूपों पर चर्चा करते हुए कहा कि इस क्षेत्र में काम करने के लिए प्रतिलिप्यधिकार जैसे कानूनी पक्ष और प्रकाशन प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। न्यास की निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने सभी को धन्यवाद दिया। तत्पश्चात पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान दिए गए व्याख्यानों और मुद्रण से संबंधित क्रियाकलापों का फिल्मांकन हुआ। कार्यक्रम की रूपरेखा न्यास के संपादक श्री मानस रंजन महापात्रा ने तैयार की तथा उत्पादन सहायक श्री नरेन्द्र कुमार ने कार्यक्रम का संचालन किया।

एनबीटी/राष्ट्रीय पुस्तक न्यास स्थापना दिवस व्याख्यान

एक अगस्त, 2019 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के दिल्ली स्थित मुख्यालय-सभागार में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास का 62वाँ स्थापना दिवस समारोह मनाया गया। विदित हो कि न्यास की स्थापना पहली अगस्त 1957 को हुई थी। न्यास की पिछले कुछ वर्षों से जारी परंपरा के क्रम को जारी रखते हुए इस बार भी एनबीटी स्थापना दिवस व्याख्यान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर न्यास के पूर्व-अध्यक्ष तथा वर्तमान में न्यास की नीति निर्माण समिति तथा न्यासधारी मंडल के विशिष्ट सदस्य श्री ब्रज किशोर शर्मा ने अपना व्याख्यान दिया। इस बार व्याख्यान का विषय था—वर्तमान भारत में पुस्तकें एवं पठन। विद्वान वक्ता श्री शर्मा ने वेदों को वर्तमान समय और संदर्भ से जोड़ा और भारत में पुस्तक पठन की महती परंपरा को भारत की विरासत बताया। भारतीय ज्ञान और मनीषा के उल्लेख के क्रम में उन्होंने बार-बार वेद, पुराण), उपनिषद आदि प्राचीन ग्रंथों का उल्लेख किया तथा कुछ विदेशी विद्वानों को भारतीय वेद परंपरा की खोज और उसकी व्याख्या करने का अनावश्यक श्रेय देने की प्रवृत्ति पर चिंता प्रकट की। उन्होंने वेद को विश्व का सबसे प्राचीन ग्रंथ बताते हुए कहा कि सदियों से वेद भारतीय सभ्यता और संस्कृति को प्रभावित और प्रेरित करता रहा है।

इससे पूर्व, न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने अपने स्वागत संबोधन में कहा, “आज का दिन हम सब के लिए गौरव और प्रसन्नता का दिन है। ...स्थापना दिवस किसी भी संस्था के लिए एक महत्वपूर्ण दिन होता है। ...मैं सभी न्यासकर्मियों को इस अवसर पर बधाई देता हूँ।” कार्यक्रम के भी अध्यक्ष प्रो. शर्मा ने कहा कि एनबीटी की ख्याति देश में ही नहीं, विदेशों तक में पहुँच चुकी है। उन्होंने आलंकारिक तथा प्रतीक रूप में बोलते हुए कहा, “न्यास का पौधा इतना बड़ा पेड़ बन चुका है कि जिसकी छाया में अब बहुत-से लोग विश्राम कर सकते हैं।”

एनबीटी स्थापना दिवस व्याख्यान के अवसर पर न्यास में अपने 25 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण कर लेने वाले कर्मियों को प्रति वर्ष सम्मानित करने की परंपरा के क्रम में इस वर्ष भी कार्यक्रम में नौ न्यासकर्मियों को शॉल तथा प्रमाणपत्र देकर सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम के अंत में न्यास की निदेशक (कार्यवाहक) श्रीमती नीरा जैन ने धन्यवाद ज्ञापन दिया। उन्होंने अपने धन्यवाद संबोधन में मुख्य अतिथि श्री ब्रज किशोर शर्मा के विद्वत्तापूर्ण उद्बोधन को न्यास के लिए गौरव की बात कहा। कार्यक्रम का संचालन न्यास में अंग्रेजी भाषा संपादक श्री द्विजेंद्र कुमार ने किया।

अंतरराष्ट्रीय पत्र दिवस पर कार्यक्रम

ग्रामीण पत्रकारिता विकास संस्थान, ग्वालियर द्वारा अंतरराष्ट्रीय पत्र दिवस पर ‘चिठिया हो तो हर कोई बाँचे’ कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता देव श्रीमाली ने की। कार्यक्रम में पत्र की लुप्त हो रही परंपरा के बारे में बताया गया जिसमें नेता, पत्रकार, साहित्यकार, समाजसेवी, छात्र-छात्राओं की भी सहभागिता रही। इस अवसर पर राज्यसभा टीवी के संपादक अरविंद कुमार सिंह, पदम सिंह सेंगर, तेजपाल सिंह राठौर, संजीव सिंह कुशवाह उपस्थित रहे।

‘महोबा की धरोहर’ पुस्तक का विमोचन

मुकुंद फाउंडेशन के तत्वावधान में महोबा की विरासत को संदर्भित करती हुई ‘महोबा की धरोहर’ पुस्तक का विमोचन किया गया। पुस्तक का संपादन श्री मनोज तिवारी ने किया है। खखरा मठ, शिव तांडव, रहेलिया का सूर्य मंदिर, मकरबई मठ, अकौना के खंडहर, सिजहरी मंदिर, खंडेह का मंदिर और न जाने कितने अवशेष हैं जिनका संग्रह कर लेखक ने भावी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन का कार्य किया है। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश पुलिस उप महानिदेशक श्री विजय कुमार, वरिष्ठ पत्रकार श्री राजेश बादल उपस्थित रहे।

विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कार्यशाला का आयोजन

विलुप्त हो रही पाँच आदिवासी भाषाओं में अनुवाद कार्यशाला

झारखंड की अधिकांश आबादी जनजातियों की है, लेकिन इनमें कुछ ऐसी हैं जिनकी आबादी तेजी से घट रही है। इन्हें 'पीवीजीटी-Particularly Vulnerable Tribal Groups' कहा जाता है। जाहिर है कि आबादी घटने के साथ उनकी भाषा, संस्कृति, लोक-मान्यताएँ, भोजन आदि पूरी संस्कृति पर संकट मंडराने लगता है। पिछले दिनों राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने डॉ. रामदयाल मुंडा जनजातीय शोध संस्थान, राँची के साथ मिल कर ऐसी ही पाँच भाषाओं—बिरहोरी, माल्तो, असुरी, बिरजिया और भूमिज में तीन-तीन पुस्तकों के अनुवाद के लिए कार्यशाला का आयोजन किया। इन भाषाओं से आए लोगों के लिए अनुवाद या लेखन या किसी साहित्यिक कार्य में सहभागिता का पहला अवसर था।

कार्यशाला के उद्घाटन अवसर पर राज्य शासन में अतिरिक्त सचिव स्तर के अधिकारी भुजेन्द्र बास्की ने इस कार्य को झारखंड के संस्कृति संरक्षण के यज्ञ की महत्वपूर्ण आहुति निरूपित किया। शोध संस्थान ने निदेशक डॉ. रणेन्द्र कुमार ने बताया कि किस तरह आंचलिक क्षेत्रों से इन भाषा के जानकारों को एकत्र किया गया। उन्होंने बताया कि अब राज्य शासन इन भाषाओं में मैट्रिक स्तर की सामग्री भी तैयार करवा रही है, जिसमें इस कार्यशाला के अनुभव काम आएँगे। रा.पु. न्यास के संपादक पंकज चतुर्वेदी ने भाषा जानकारों का स्वागत करते हुए उन्हें अनुवाद प्रक्रिया के महत्वपूर्ण पदों की जानकारी दी।

इस कार्यशाला में सहभागी थे—बिरहोरी भाषा से विजय बिरहोर, सिमोन बिरहोर; बिरजिया से फूलेश्वर और विलियम बिरजिया; असुर से योगेश्वर असुर; माल्तो से रामा पहाड़िया, सिमोन माल्तो, क्यूनी माल्तो और प्रेम कुमार; भूमिज से वृहस्पति सरदार, परमेश्वर सरदार और विरेन सरदार। इस कार्यशाला में श्रीमती कुसुम लता सिंह भाषा-विशेषज्ञ के रूप में शामिल हुईं।

चार दिन की कार्यशाला में अनुवाद, संपादन, टाईपिंग और पुस्तकों की डम्मी तैयार करने का कार्य संपन्न हुआ।

गुजराती भाषा अनुवाद कार्यशाला

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित बाल-साहित्य की पुस्तकों के गुजराती अनुवाद की कार्यशाला 29 जून से एक जुलाई, 2019 तक न्यास के मुख्य कार्यालय, नई दिल्ली के सभागार में आयोजित हुई। इस कार्यशाला में अनुवादकों ने हिंदी व अंग्रेजी पुस्तकों का गुजराती में अनुवाद किया। दिल्ली-एनसीआर के आठ अनुवादकों ने तीन दिनों में 25 पुस्तकें अनूदित कीं। प्रतिभागी अनुवादक थे—श्री अमित जोशी, सुश्री अंजली जैन, श्री आशीष मेहता, सुश्री चाँदनी बावीसी, सुश्री ज्योति श्रौफ, सुश्री लता जोशी, श्री राजेश पटेल और सुश्री रीति शाह। कार्यशाला के समापन-अवसर पर न्यास की तत्कालीन निदेशक डॉ. रीता चौधरी ने अनुवादकों को साधुवाद दिया। मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने भी अनुवादकों के कार्य-सहयोग की सराहना की। कार्यशाला का संचालन भाग्येन्द्र बहादुरभाई पटेल, सहायक संपादक (गुजराती) ने किया। न्यास की श्रीमती मीना शर्मा एवं सहयोगियों ने कार्यक्रम को सफल बनाने में सहयोग किया।

पंजाबी भाषा अनुवाद कार्यशाला

न्यास की हिंदी से पंजाबी भाषा में अनुवाद की एक कार्यशाला का पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में आयोजन किया गया। इसमें पंजाब कला परिषद

का भी सहयोग रहा। पंजाबी विभाग के प्रमुख डॉ. सुरजीत सिंह स्रोत व्यक्ति के रूप में शामिल हुए। अनुवाद विषय के प्रोफेसर डॉ. सतीश कुमार वर्मा ने 'अनुवाद कैसे करें' तथा अनुवाद करते समय आने वाली मुश्किलों पर एक व्याख्यान दिया। कार्यशाला में विभाग के सभी विद्यार्थियों एवं अध्यापकों ने भाग लिया। कार्यशाला में कुल 11 पुस्तकों का अनुवाद किया गया।

इससे पूर्व, 3-4 जून, 2019 को चंडीगढ़ में भी एक अनुवाद कार्यशाला का आयोजन किया गया था। दोनों ही कार्यशाला का समन्वय न्यास में पंजाबी भाषा की सहायक संपादक सुश्री नवजोत कौर ने किया।

मराठी भाषा अनुवाद कार्यशाला

नासिक में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास तथा कुसुमाग्रज प्रतिष्ठान के संयुक्त तत्वावधान में मराठी भाषा के अनुवाद कार्यशाला का आयोजन किया गया। 27 व 28 जुलाई, 2019 को आयोजित इस कार्यशाला में न्यास के बाल साहित्य तथा नवसाक्षर साहित्य की 15 पुस्तकों के मराठी भाषा में अनुवाद करवाने हेतु स्थानीय अनुवादकों को आमंत्रित किया गया था। कार्यशाला के उद्घाटन सत्र के मुख्य अतिथि थे वरिष्ठ लेखक श्री रवींद्र गुर्जर। कार्यशाला की संदर्भ व्यक्ति थीं स्वाति राजे। न्यास की ओर से हिंदी के सहायक संपादक श्री ललित किशोर मंडोरा तथा न्यास में मराठी भाषा सलाहकार सुश्री निवेदिता ने कार्यशाला के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। कार्यशाला के समन्वयक थे डॉ. स्वप्निल।

आगामी अंक के लिए

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पत्रिका का **मार्च-अप्रैल, 2020** का अंक

'क्रांतिकारी' विशेषांक होगा,

जिसमें भारत के क्रांतिकारियों के विचार, संघर्ष, उनसे जुड़े स्थान लेखन आदि पर सामग्री होगी।

इस अंक के लिए सामग्री **30 सितंबर, 2019** तक भेज सकते हैं।

लेखकों हेतु निर्देश :

1. सामग्री अधिकतम दो हजार शब्दों तक हो।
2. रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए।
3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र अवश्य भेजें।
4. लेखक का चित्र, पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं) भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें, भेजें।
5. किसी विशेषांक में प्रकाशनार्थ सामग्री समयसीमा के पश्चात भेजने पर स्वीकार्य नहीं होगी।

पत्रिका के संपादक की ई-मेल पर भेजी गई रचनाएँ ही स्वीकार्य होंगी। ध्यान रहे कि रचना कृति, यूनिकोड या फिर शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

नोट : पत्रिका का मुख्य उद्देश्य पुस्तक प्रोन्नयन और पठन अभिरुचि के विकास के लिए उपयोगी सामग्री का प्रकाशन करना है। कहानी-कविताओं के लिए इसमें कम ही स्थान है।

संपादक (पुस्तक संस्कृति)
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत,
5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2, नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707758, 26707876

द्विमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' के वार्षिक सदस्य बनें

वार्षिक सदस्यता शुल्क— अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.

पत्रिका का सदस्यता शुल्क भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्नांकित है :

Bank: **CANARA BANK**, Branch: **Vasant Kunj, New Delhi 110070**

A/C No.: **3159101000299**

IFSC CODE: **CNRB0003159**

इसके अलावा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय चेक, ड्राफ्ट या धनादेश भी भेजा जा सकता है।

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

स्वाधीनता आंदोलन में उत्तराखंड की पत्रकारिता

जयसिंह रावत

उत्तराखंड की पत्रकारिता के अतीत और स्वाधीनता आंदोलन में इस पहाड़ी भूभाग के पत्रों और पत्रकारों के योगदान को अक्षुण बनाए रखने के लिए, स्वाधीनता आंदोलन में अखबारों की भूमिका की दबी हुई कड़ियों को जोड़कर पुस्तक के रूप में दस्तावेज़ीकरण करने का प्रयास किया गया है। भावी पीढ़ी के लिए इन गौरवमयी स्मृतियों को संजोए रखने के उद्देश्य से यह पुस्तक तैयार की गई है। इसमें कई ऐसे चित्र व दस्तावेज़ हैं जो कि इसे प्रामाणिकता प्रदान करते हैं।

पृ. 446; रु. 440.00

कैंसर

लेखन एवं अनुवाद : शशांक मोहन बोस

पिछले कुछ वर्षों में भारत में कैंसर के मामले तेज़ी से बढ़े हैं। जागरुकता की कमी के कारण, मरीज इसके अंतिम चरण में विशेषज्ञ की ओर रुख करते हैं, जबकि कैंसर के जल्द पता चलने से बीमारी के उचित एवं प्रभावी उपचार में मदद मिलती है। यह पुस्तक कैंसर के मूल कारण, कारक, खतरे के संकेत और रोग जाँच के नैदानिक तरीकों के बारे में बताती है।

पृ. 98; रु. 95.00

महान पेशवा बाजीराव प्रथम

चन्द्रकान्त तिवारी

महान पेशवा बाजीराव प्रथम के जीवन और कार्यक्षेत्र के सभी पक्षों को प्रस्तुत करती यह पुस्तक उनके संपूर्ण इतिहास पर अभी तक प्राप्त सभी मौलिक उपलब्ध जानकारियों के आधार पर निष्पक्ष रूप से प्रकाश डालती है। इसमें बाजीराव और मस्तानी के संपूर्ण आख्यान का समकालीन स्रोतों के आधार पर निष्पक्ष वर्णन किया गया है।

पृ. 336; रु. 375.00

कृष्ण की कथा

मनोज दास

अनुवादक : ऋचा त्रिपाठी पाण्डेय

नेहरू बाल पुस्तकालय पुस्तक-माला के अंतर्गत प्रकाशित यह पुस्तक 12 से 14 आयुवर्ग के बच्चों के लिए आकर्षक रंगीन चित्रों के साथ कृष्ण कथा प्रस्तुत करती है। बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर पुस्तक के चित्र एवं आवरण पृष्ठ तैयार किया गया है। भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है। कुछ कहानियों के शीर्षक हैं—जुलूस और भविष्यवाणी, दो वृक्षों की कथा, मथुरा से कृष्ण को बुलावा, तानाशाह का अंत, गुरु के लिए उपहार, महान मित्रता, महाभारत का महान युद्ध, अवतार का अंत आदि।

पृ. 156; रु. 205.00

राजेश जैन

श्रेष्ठ कहानियाँ

संग्रह की 27 कहानियों को लेखक ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं पर्यावरण के तीन खंडों में बाँटकर प्रस्तुत किया है। कथालेखक ने मानो टाइम मशीन में सवार होकर भविष्य की विज्ञान आधारित जीवन-शैली और रिश्ते-नातों का जो काल्पनिक खाँचा खींचा है या जो ताना-बाना बुना है, वह आज भले ही काल्पनिक लगे परंतु वह कल का यथार्थ भी हो सकता है। लेखक राजेश जैन ने हिंदी में विज्ञान गल्प के विचार-स्वप्न में पंख लगा उसे जीवंत कर दिया है।

पृ. 256; रु. 265.00

मीनाक्षी स्वामी

संकलित कहानियाँ

हिंदी कथा साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर मीनाक्षी स्वामी के इस संकलन में उनकी 19 नायाब कहानियाँ हैं। प्रत्येक कहानी एक नई भाव भूमि पर स्थित है। ये कहानियाँ शोषण पर समाप्त नहीं होतीं, बल्कि शोषित दोगुने हौंसले से परिवेश को बदलने की कोशिश करता दिखाई देता है। कल्पना, अनुभूति और यथार्थ का सहज संयोजन इन कहानियों को विशेष बनाता है। प्रवाहमान भाषा और कलात्मक शब्दचित्र पाठक को बाँधे रखेंगे।

पृ. 146; रु. 170.00

भूलना मत काका

आनंद प्रकाश जैन

चित्रांकन : फ़ज़रूद्दीन

नेहरू बाल पुस्तकालय पुस्तक-माला के अंतर्गत 12 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए प्रकाशित इस कहानी संग्रह में आठ बाल कथाएँ संकलित की गई हैं जो रोमांच और मनोरंजन से भरी हुई हैं। रंगीन चित्रांकन आकर्षक है।

पृ. 52; रु. 75.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 • **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in